

जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2530



श्री नन्दीश्वर द्वीप-रचना जिनालय

पिसनहारी-मढिया, जबलपुर, म.प्र.

श्रावण-भाद्रपद, विसं. 2061

अगस्त 2004

अन्याय के हजार वर्ष की अपेक्षा एक पल सत्य के साथ जीना उचित

आचार्य श्री विद्यासागर जी

पक्ष और विपक्ष दोनों अलग-अलग होते हैं। राष्ट्र में उनका लक्ष्य भी अलग-अलग होता है, किन्तु दोनों का राष्ट्रीय पक्ष एक ही होता है। राष्ट्रहित के पक्ष को मजबूत करने के लिए जिस तरह सभी पक्ष एकजुट हो जाते हैं, उसी प्रकार से अहिंसा का पक्ष भी हर जगह लिया जाना चाहिए। स्थान चाहे लोकसभा, राज्यसभा अथवा विधानसभा हो, अहिंसा के पक्ष को समर्थन सभी जगह दिया जाना चाहिए। अन्याय के पक्ष में हजार वर्ष जीने की अपेक्षा एक पल सत्य के साथ जीना उचित है। सत्य और अहिंसा के साथ ही विजय और मोक्ष के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है।

शरीर को जैसा आप रखना चाहोगे, वह वैसा ही काम में आता है। जागृति भीतर से आना चाहिए। वह स्वप्रेरणा से मिलती है। आज का युग परिश्रम से दूर है। सुविधा के साथ भी लोग कुछ करना नहीं चाहते हैं। राष्ट्र में पक्ष और विपक्ष दोनों लक्ष्य भूलकर एक-दूसरे के विरोध में रहते हैं। देखने के लिए एक आँख काम में आती है। पर क्या उड़ने के लिए एक पंख पर्याप्त है? कदापि नहीं। एक आँख से देखा तो जा सकता है, लेकिन दोनों आँखों से अलग-अलग जगहों पर एक साथ देखा नहीं जा सकता है। आँखें एक-दूसरे की मदद करती हैं और नाक उनके बीच कलह को रोकने का काम करती है। केन्द्र की बात करना सरल है, लेकिन केन्द्रीभूत होना बहुत कठिन होता है। मन को ब्रेक लगाओ और यदि मन मंजूरी देता है, तो सभी काम आँखों से ठीक हो सकते हैं। राष्ट्र में पक्ष और विपक्ष दोनों को चाहिए कि राष्ट्रीयता की भावना के साथ अपनी शक्ति और क्षमता का राष्ट्रहित में सदुपयोग करें।

सही दिशा में कार्य करने से सुफल मिलता है। विचार को शालीनता से रखा जाना चाहिए। क्षोभ के बिना जो कार्य होता है, वह उचित है। लेकिन क्षोभ के बिना कार्य का यह अर्थ भी नहीं कि हों में हों मिला दें, अवसरवादी बन जायें। सभी मिलकर राष्ट्रीय पक्ष मजबूत करें। आत्मा का उद्धार स्वपरप्रकाशक ज्ञान के माध्यम से होता है। नेतृत्व करने वाला व्यक्ति काफी गम्भीर होता है। उसे किसी भी निर्णय को करने से पहले काफी गम्भीरता से विचार करना पड़ता है। नदी के बीच में उथल-पुथल नहीं होती, तथा न ही तरंग उठती है। वह तो किनारों को साथ लेकर चलती है। इसी प्रकार नेतृत्वकर्ता राष्ट्र के सर्वांगीण हित में विकास के लिए सोचता रहे, सभी को साथ में लेकर चलता रहे। शतरंज के खेल का उदाहरण देते हुए तपोनिधि ने कहा कि इस खेल में अपने को तथा विपक्ष को दोनों को देखें। पक्ष वाले को सामने वाले का पक्ष सीधा नहीं दिखता। उसके लिए उल्टी चाल चलनी होती है। वर्तमान में शतरंज का खेल प्रत्येक के जीवन के साथ चल रहा है। अन्याय का विरोध शतरंज के खेल की तरह उल्टी चाल से किया जा सकता है।

विभीषण ने अन्याय के विरुद्ध स्वयं को मन, वचन और कर्म से समर्पित किया था। भगवान राम के समक्ष जब वह गया, तो बिना बोले ही उसका त्याग और समर्पण झलक रहा था, जैसे कि वह अग्निपरीक्षा के लिए तैयार हो। उसके हाव-भाव देखकर क्रोधित लक्ष्मण भी शांत हो गये। हमें भी शांति प्राप्ति के लिये क्रोधरूपी अग्नि को उतार देना चाहिए। अपने मनोभावों को हम बिना बोले ही प्रदर्शित कर सकते हैं। शब्द पंगु है। जवाब दिये बिना भी अपने सम्पूर्ण भावों को मुखमण्डल के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकते हैं। प्रार्थना करो कि सामनेवाला आपके मनोभाव समझ ले।

प्रेषक : निर्मलकुमार पाटोदी

22, जॉय बिल्डर्स कॉलोनी, इन्दौर 452003 (म.प्र.)

अगस्त 2004

मासिक

वर्ष 3, अङ्क 7

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल 462039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं.मूलचन्द लुहाड़िया
(मदनगंज किशनगढ़)
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बडौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन, 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे.आर.के. मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कालोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2151428,
2152278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.
परम संरक्षक 51,000 रु.
संरक्षक 5,000 रु.
आजीवन 500 रु.
वार्षिक 100 रु.
एक प्रति 10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ❖ सम्पादकीय : वात्सल्य, बन्धुत्व एवं गुरुभक्ति का प्रतीक
रक्षाबन्धन पर्व 2
- ❖ प्रवचन : अन्याय के हजार वर्ष की अपेक्षा एक पल
सत्य के साथ जीना उचित
: आ. श्री विद्यासागर जी आ.पृ. 2
- ❖ लेख
 - ◆ समाधिमरण के अवसर में मुनिदीक्षा
: पं.मिलापचन्द कटारिया 5
 - ◆ श्रमणचर्या का अभिन्न अंग अनियतविहार
: डॉ. श्रेयांस जैन 8
 - ◆ प्राचीन जैन ग्रन्थकारों द्वारा कुन्दकुन्द के
नाम-अनुल्लेख का कारण : प्रो. रतनचन्द्र जैन 12
 - ◆ परिग्रह से निवृत्ति का साधन
उत्तम त्याग धर्म : डॉ. नरेन्द्र जैन भारती 15
 - ◆ भगवान की जन्मभूमि में अंतर क्यों ?
: कैलाश मड़बैया 17
 - ◆ आदर्श जीवन शैली ही धर्म है : प्रो. वी.के. जैन 19
 - ◆ वासना से वात्सल्य की ओर : श्रीमती सुशीला पाटनी 20
 - ◆ यदि आप शाकाहारी हैं तो अवश्य
ध्यान रखें : पदम रांटा 21
- ❖ प्राकृतिक चिकित्सा
 - ◆ वायु है वरदान : डॉ. वंदना जैन 23
- ❖ जिज्ञासा- समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 25
- ❖ म.प्र. अल्पसंख्यक आयोग द्वारा लिखा पत्र
: अरुण जैन 27
- ❖ बाल वार्ता
 - ◆ वह देना सीख रही है : डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 14
- ❖ कविता
 - ◆ आचार्य श्री शान्तिसागर विनयांजलि अष्टक
: मुनि श्री आर्जवसागर आ.पृ. 3
- ❖ समाचार 30-32

लेखक के विचारों से सम्पादक को सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित विवादों के लिए न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

वात्सल्य, बन्धुत्व एवं गुरुभक्ति का प्रतीक रक्षा बन्धन पर्व

भारतीय संस्कृति में पर्वों का विशिष्ट महत्त्व है। किसी भी समाज के पर्वों को देखकर उसकी संस्कृति, सभ्यता, जीवन शैली, धार्मिकता एवं प्राचीन परम्पराओं का सहज ही पता चल जाता है। ये पर्व सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक, पारिवारिक, अन्तर्राष्ट्रीय आदि विविध प्रकार के माने गए हैं। सम्पूर्ण भारत देश में विशेष उत्साह से मनाया जानेवाला रक्षाबन्धन पर्व सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय महत्त्व वाला महान पर्व है, जो प्रतिवर्ष श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को विशेष उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस पर्व का प्रारंभ जैन धर्म के अठारहवें तीर्थंकर भगवान अरहनाथ के तीर्थकाल से माना जाता है। इसकी उत्पत्ति-सम्बन्धी कथा पुण्यास्त्रव कथाकोश में इस प्रकार की गई है-

अवन्ती देश की उज्जयिनी नगरी में राजा श्रीवर्मा था, उसकी रानी श्रीमती थी और बलि, वृहस्पति, प्रह्लाद तथा नमुचि ये चार मंत्री थे। एक बार उज्जयिनी में समस्त श्रुत के धारी, दिव्यज्ञानी सात सौ मुनियों के साथ अकम्पनाचार्य उद्यान के वन में ठहर गए। आचार्य ने समस्त संघ से कहा कि यदि राजादिक भी आये तो भी कोई मुनि बोले नहीं, अन्यथा समस्त संघ का नाश हो जायेगा। धवलगृह पर स्थित राजा ने हाथ में पूजा की सामग्री लेकर नगर के लोगों को जाते हुए देखकर मन्त्रियों से कहा-बहुत से जैन मुनि नगर के बाहरी उद्यान में आये हुए हैं, वहाँ पर ये लोग जा रहे हैं। हम भी उनके दर्शन के लिये चलें, ऐसा कहकर राजा भी उन चार मन्त्रियों के साथ गया। प्रत्येक मुनि की सभ्यता ने वन्दना की, किन्तु किसी ने भी आशीर्वाद नहीं दिया। राजा ने सोचा दिव्य अनुष्ठान के कारण निःस्पृह (इच्छा रहित) ये मुनि बैठे हैं, अतः वह वापिस लौटने लगा। रास्ते में दुष्ट अभिप्राय-धारक मन्त्रियों ने उपहास किया कि ये मूर्ख बैल हैं- इस प्रकार बोलते हुए जब वे आगे जा रहे थे, तभी आगे चर्चाकर श्रुतसागर मुनि को आते हुए देखकर उन मन्त्रियों में से किसी ने कहा- 'यह तरुण बैल, पेट भर कर आ रहा है।' यह सुनकर श्रुतसागर मुनि ने राजा के ही सामने उन मन्त्रियों को शास्त्रार्थ में जीत लिया तथा आकर अकम्पनाचार्य से समाचार कहा। आचार्य श्री ने कहा तुमने सारे संघ को मार दिया। यदि शास्त्रार्थ के स्थान में जाकर रात में तुम अकेले ठहरते हो, तो संघ जीवित रहेगा तथा तुम्हारी शुद्धि होगी। अनन्तर श्रुतसागर मुनि वहाँ जाकर कायोत्सर्गपूर्वक खड़े हो गये। अत्यन्त लज्जित क्रुद्ध मन्त्रियों ने रात्रि में संघ को मारने के लिए जाते समय उन एक मुनि को देखकर 'जिसने हमारा निरादर किया, उसे ही मारना चाहिए' ऐसा विचार कर उनके वध के लिए एक साथ चार तलवारें खींची। इसी समय नगर देवी का आसन कम्पायमान हुआ, उसने उन मन्त्रियों को उसी अवस्था में कील दिया। प्रातःकाल समस्त लोगों ने उन्हें उसी प्रकार देखा। राजा बहुत रुष्ट हुआ, किन्तु ये मन्त्री कुल परम्परा से आगत हैं, ऐसा जानकर उन्हें उसने नहीं मारा। उन्हें गधे पर चढ़ाना आदि कराकर (सजा देकर) देश से निकाल दिया।

कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर का राजा पद्मरथ था। उसकी रानी का नाम लक्ष्मीमति था। उसके पद्मरथ और विष्णु दो पुत्र थे। एक बार पद्मरथ को राज्य देकर पद्मरथ विष्णु के साथ श्रुतसागर चन्द्राचार्य के समीप मुनि हो गये। वे बलि आदि मंत्री आकर राजा पद्मरथ के मंत्री हो गए। कुम्भपुर नगर में राजा सिंहबल था, वह दुर्ग के बल में पद्मरथ के मण्डल के ऊपर उपद्रव करता था। उसे पकड़ने की चिन्ता के कारण पद्मरथ को दुर्बल देखकर बलि ने पूछा 'महाराज दुर्बलता का क्या कारण है?' राजा ने उसी समय अपनी दुर्बलता का कारण कहा। वह सुनकर आदेश माँगकर कुम्भपुर जाकर बुद्धि के माहात्म्य से दुर्ग तोड़कर सिंहबल को पकड़कर लौटकर उसे पद्मरथ को समर्पित कर दिया- 'महाराज! वह सिंहबल यह है। सन्तुष्ट होकर उसने कहा- 'इच्छित वर माँगों।' बलि ने कहा - 'जब माँगूंगा, तब दीजिएगा।'

अनन्तर कुछ दिनों में विहार करते हुए वे अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनि हस्तिनापुर आए। नगर में चहल-पहल होने पर बलि आदि ने भयपूर्वक विचार किया कि राजा इनका भक्त है। अतः संघ को मारने के लिए पहले

से ही पद्म ने प्रार्थना की- हमें सात दिन के लिए राज्य देकर अपने अन्तःपुर में रहने लगे। बलि ने आतापान गिरि पर कायोत्सर्ग से स्थित मुनियों को बाड़ से घेरकर मण्डप बनाकर यज्ञ करना आरम्भ किया। छोड़े हुए सकोरे तथा बकरे आदि जीवों के कलेवर और धुएँ से मुनियों को मारने के लिए उपद्रव किया। मुनि आभ्यन्तर और बाह्य संन्यास पूर्वक स्थित हो गए (अर्थात् जब तक उपसर्ग दूर नहीं होगा तब तक अन्नजल का त्याग एवं मन में कषायों को शान्त रखते हुए ध्यान करने लगे)।

अनन्तर मिथिला नगरी में आधी रात्रि के समय बाहर निकलते हुए श्रुतसागरचन्द्र आचार्य ने श्रवण नक्षत्र को काँपता हुआ देखकर अवधिज्ञान से जानकर कहा- 'महामुनियों के ऊपर महान उपसर्ग हो रहा है।' उसे सुनकर पुष्पदन्त नामक विद्याधर क्षुल्लक ने पूछा - 'भगवन कहाँ पर ? किन मुनियों के ऊपर उपसर्ग हो रहा है?' आचार्य ने कहा- 'हस्तिनापुर में अकंपनाचार्य आदि मुनियों के ऊपर उपसर्ग हो रहा है।' क्षुल्लक ने पूछा 'वह उपसर्ग कैसे नष्ट होगा?' आचार्य ने उत्तर दिया- 'धरणिभूषण पर्वत पर विष्णुकुमार मुनि ठहरे हैं। उन्हें विक्रिया ऋद्धि प्राप्त है, वह उपसर्ग का नाश करेंगे' यह सुनकर क्षुल्लक ने उनके समीप जाकर सब वृत्तान्त सुनाया। विष्णुकुमार (मुनि) ने 'क्या मुझे विक्रिया ऋद्धि है?' यह विचार कर विक्रिया ऋद्धि के लिए हाथ फैलाया। वह हाथ पर्वत को भेदकर दूर चला गया। अनन्तर विक्रिया ऋद्धि का निर्माण कर हस्तिनापुर जाकर उन्होंने पद्मराज से कहा- 'क्या मुनियों के ऊपर उपसर्ग तुमने कराया है? आपके कुल में किसी ने भी ऐसा नहीं किया' पद्मराज ने कहा - 'क्या करूँ ? पहले इन्हें मैंने वर दे दिया है।'

अनन्तर विष्णुकुमार मुनि ने वामन (बौने) ब्राह्मण का रूप धारण कर दिव्यध्वनि से प्रार्थना की। बलि ने कहा- 'आपको क्या दूँ?' उन्होंने कहा 'तीन डग भूमि दीजिए।' 'हठी ब्राह्मण अन्य बहुत मांगो' इस प्रकार बारम्बार लोगों के द्वारा कहे जाने पर भी वे वही माँगने लगे। हाथ में जल लेने आदि की विधि से तीन पैर भूमि दिए जाने (का संकल्प लिए जाने) पर उन्होंने एक पैर मेरु पर रखा, दूसरा पैर मानुषोत्तर पर्वत पर तथा तीसरे पैर से देवविमान आदि में क्षोभ उत्पन्न कर बलि की पीठ पर उस पैर को रखकर बलि को बाँधकर मुनियों के उपसर्ग का निवारण किया। अनन्तर वे चारों मंत्री और पद्म भयवश आकर विष्णु कुमार और अकम्पनाचार्यादि मुनियों के पैरों में पड़ गए। वे मंत्री श्रावक हो गये। व्यन्तर देवों ने विष्णुकुमार की पूजा की (पृ 29-31)

इस प्रकार विष्णुकुमार मुनि ने वात्सल्य भावना से अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों के ऊपर किये जा रहे उपसर्ग को दूर करने के बाद प्रायश्चित्त पूर्वक पुनः दीक्षा धारणकर आत्मसाधना की। इधर आम जनता ने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मुनियों के उपसर्ग निवारण होने पर आहार कराने के बाद ही भोजन ग्रहण करेंगे। अतः अनेक दिनों के उपवास करने वाले उन मुनियों को दूध की सीमितियों का हल्का (पथ्य) आहार कराया तथा परस्पर में एक - दूसरे की रक्षा के भाव से संकल्पबद्ध हो बन्धन बाँधा, जिसकी पावन स्मृति में आज भी प्रतिवर्ष श्रावक शुक्ल पूर्णिमा (उपसर्ग निवारण दिवस) को रक्षाबन्धन मनाया जाता है।

कालान्तर में यह रक्षाबन्धन पर्व भाई-बहिन के पवित्र प्रेम का प्रतीक, देश रक्षा का प्रतीक, वात्सल्य का प्रतीक पर्व बन गया है। इस दिन बहिनें अपने भाइयों की कलाई पर राखी बाँधने के साथ ही भाई से अपनी आजीवन रक्षा का पुरस्कार पाती हैं। वास्तव में यह पर्व देव-शास्त्र-गुरु (मुनि) रक्षण, सामाजिक एवं राष्ट्रीय सुरक्षा के रूप में यह सन्देश जन-जन में प्रचारित करता है कि हम सब संकल्पबद्ध एकता के साथ ही आत्मरक्षा कर सकते हैं।

इसी दिन यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करने की भी परम्परा है, जिसे रत्नत्रय के प्रतीक स्वरूप श्रावकोचित अष्टमूल गुणों यथा-मद्य (शराब, भांग, गांजा, चरस) मांस, मधु (शहद) तथा पंच उदुम्बर (बड़, पीपल, पाकर, ऊमर, कठूमर) फलों के त्याग के पालन करने की प्रतिज्ञा के साथ धारण किया जाता है।

इस दिन नियम से हमें मुनियों (साधुओं) को प्रथम आहार दान तथा शास्त्र भेंट आदि ज्ञानदान के साथ साधर्मी श्रावकों को वात्सल्यभाव से उपकृत करना चाहिए।

एक ओर वे अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनि धन्य हैं, जो घोर कष्टों (उपसर्ग) को सहते हुए भी विरोधियों पर कुपित न होकर उन्हें क्षमा करते हैं। दूसरी ओर वे श्रुतसागर जैसे मुनि धन्य हैं जो गुरु आज्ञा के पालन तथा संघ की रक्षा के लिए स्वयं उपसर्ग झेलते हैं। तीसरी ओर वे विष्णुकुमारमुनि धन्य हैं जो स्वपररक्षा, धर्मरक्षा तथा मुनिरक्षा के भाव से अपनी शक्ति का उपयोग न्याय व धर्म की प्रतिष्ठा में करते हैं तथा जीतने के बाद भी शत्रु के प्रति शत्रुता न रखकर उसे क्षमा कर देते हैं। चौथी ओर वे श्रावक- उनकी गुरुभक्ति धन्य है जो मुनियों के उपसर्गनिवारण तक स्वयं अन्न जल का त्याग कर उपसर्ग दूर करने की प्रार्थना करते हैं। वास्तव में मुनि समाज के लिए दिशानिर्देशक एवं पथप्रदर्शक का कार्य करते हैं, हमें सुयोग प्राप्त इन मुनियों का संरक्षण करते हुए आहारदानादिक देकर स्वयं के जीवन को कृतार्थ करना चाहिए।

रक्षा बन्धन पर्व हमें बताता है कि बंधनों से अपनी आत्मा की रक्षा करो। हमारा अध्यात्म कहता है कि हमारे लिए रक्षणीय हमारी आत्मा है, जिसे अहितकर प्रवृत्तियों से निवृत्ति दिलानी है। हमारे लिए अहितकर हैं - विषय और कषाय। कहा भी है। 'आत्म के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय'। विषय-कषायों से जकड़ी आत्मा अपना उद्धार नहीं कर सकती, अतः क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषायों के पाश से आत्मा की रक्षा आवश्यक है। विभावदशा का त्याग कर स्वभाव की ओर उन्मुख होना ही रक्षा- बन्धन है। विषय वासनाओं के जाल से मुक्ति के लिए मन पर नियंत्रण स्थापित करना आवश्यक है। हमारा प्रयत्न हो कि हमारा मन इन्द्रियोन्मुख न होकर अतीन्द्रियआत्मा की ओर मुड़े। यही मानव जीवन की सार्थकता है। आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव में लिखा है -

इन्द्रियाणि न गुप्तानि नाभ्यस्तश्चित्तनिर्जय ।

न निर्वेदः कृतो मित्र नात्मा दुःखेन भावितः ॥

एवमेवापवर्गाय प्रवृत्तैर्ध्यानसाधने ।

स्वमेव वञ्चितं मूढैर्लोकद्वयपथच्युतैः ॥

अर्थात् हे मित्र! जिन्होंने इन्द्रियों को वश में नहीं किया, चित्त को जीतने का अभ्यास नहीं किया, वैराग्य को प्राप्त नहीं हुए, आत्मा को कष्टों से भाया नहीं और वृथा ही मोक्ष हेतु ध्यान में प्रवृत्त हो गये, उन्होंने अपने को ठगा और इहलोक, परलोक दोनों से च्युत हुए।

हमारे हृदय में प्रेम, वात्सल्य, क्षमाशीलता, अहिंसा तथा धर्म (समाज, राष्ट्र, अध्यात्म) की रक्षा के भाव जागृत हों, इसी भावना एवं प्रयत्न के साथ रक्षाबन्धन पर्व मनाना चाहिए।

हे श्रमण तुम्हारी वाणी के अमृत रस का हम पान करें ।

विषदूर विषमता का होवे, समरस जीवन निर्माण करें

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन

एल-65, न्यू इन्दिरा नगर, बुराहानपुर (म.प्र.)

संशोधन कर पढ़ने की कृपा करें

जुलाई 2004 के 'जिनभाषित' में प्रकाशित 'कर्मसिद्धान्तव्यवस्था से वेदवैषम्य की सिद्धि' नामक लेख में प्रूफरीडिंग में असावधानी के कारण प्रथम अनुच्छेद (पैरा) में कुछ वाक्य त्रुटिपूर्ण हो गये हैं। उक्त वाक्यों को इस प्रकार पढ़ा जाए।

“देवों, नारकियों, भोगभूमिजों तथा कर्मभूमि के सम्मूर्च्छनज संज्ञी-असंज्ञी तिर्यचों और सम्मूर्च्छनज मनुष्यों में द्रव्यवेद और भाववेद समान ही होते हैं।..... किन्तु कर्मभूमि के गर्भज संज्ञी-असंज्ञी तिर्यचों और मनुष्यों में व्यवस्था कुछ भिन्न है।”

संपादक

समाधिमरण के अवसर में मुनिदीक्षा

स्व. पं. मिलापचंद कटारिया

जब किसी ब्रह्मचारी आदि श्रावक की जिस दिन मृत्यु होने को होती है तो प्रायः आज-कल उसे नग्नलिंग धारण कराकर और उसका गृहस्थावस्था का नाम भी बदलकर मुनित्व का द्योतक दूसरा ही कोई नाम रखकर पूर्णतः उसे मुनि ही मान लिया जाता है और मृत्यु के बाद उसको उसी नए नाम से पुकारा भी जाता है। परन्तु क्या यह प्रथा वर्तमान में ही देखने में आ रही है या पहिले भी थी? और इसका किसी समीचीन आगम से समर्थन भी होता है या नहीं, इस पर विचार होना आवश्यक है। यह नहीं हो सकता कि आजकल के साधु स्वेच्छा से जो कुछ कर दें वही प्रमाण मान लिया जावे।

अंतिम समय में सावद्यक्रियाओं को त्याग कर सब परिग्रहों का छोड़ देना यह जुदी चीज है और मुनि बनना जुदी चीज है। मुनि बनने के लिए गुरु से दीक्षा लेनी पड़ती है और दीक्षा में प्रथम ही लौंच करना जरूरी होता है जिसे आजकल अंतिम समय में मुनि बनने वाले नहीं करते हैं। वे प्राचीन मर्यादा को भंग करते हैं। मरण के अवसर में मुनि बनने वालों को पंच समितियों, षट् आवश्यक, स्थिति, भोजन, अस्नान, अदंतधावन, आदि मूलगुणों के पालन करने का अवसर ही नहीं आता है। परीषहों का सहना, तपस्या आदि भी उन्हें नहीं करनी पड़ती है। फिर भी उन्हें मुनि मान लेना यह तो एक तरह से मुनित्व की विडंबना है। यदि कहो कि किसी की मुनि दीक्षा लिए बाद दस पांच घंटों में ही सर्पविष आदि से मृत्यु हो जाए तो क्या वह मुनि नहीं माना जा सकता? क्योंकि उसको भी मुनि के मूलगुणों के पालने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ है। उत्तर इसका यह है कि उसमें और इसमें अंतर है। उसको तो यह पता नहीं था कि-मेरी मृत्यु आज ही हो जाएगी इसलिए उसके तो मुनि बनते वक्त यह संकल्प रहता है कि-मुझे मूलगुणों का पालन करते हुए परीषहें सहनी हैं एवं तपस्या करके निर्जरा करनी है इसलिए वह तो मुनि माने जाने के योग्य है किन्तु दूसरा मृत्यु की निकटता के वक्त मुनि बनने वाला जब यह देखता है कि-मैं अब मरने ही वाला हूँ, यह भोग सामग्री व धन कुटुम्बादि सब थोड़ी ही देर में वैसे ही छूट रहे हैं तो इनको मैं ही क्यों न त्याग दूँ जिससे मैं मुनि माना जाने लगूँगा और उससे मेरा बेड़ा भी पार हो जाए तो इसके सिवा और कल्याण का सरल मार्ग भी क्या हो सकता है? ऐसा विचार कर वह मुनि बनता है। इस प्रकार दोनों की परिणति में बड़ा अंतर है।

दूसरी बात यह है कि - मुनि के भी जब यही बांछा रहती है कि-उसकी मृत्यु समाधि मरण पूर्वक हो तो श्रावक

को अंतिम समय में मुनि बनने की क्या आवश्यकता है? उसका भी लक्ष्य उस वक्त सल्लेखनापूर्वक मरण करने का ही होना चाहिए न कि मुनि बनने का। अपने जीवन में चिरकाल तक अणुव्रतों और महाव्रतों का पालना भी तभी सफल होता है जब समाधिमरण से देहांत हो। ऐसी हालत में मरणकाल में मुनि दीक्षा लेना निरूपयोगी है। रत्नकरंड श्रावकाचार में कहा है कि-

अंतक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।

तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥ 2 ॥

अधिकार 5

अर्थ- तपश्चर्या का फल समाधिमरण पर आश्रित है ऐसा सर्वज्ञ भगवान् कहते हैं। इसलिए अंतसमय में अपनी सारी शक्ति समाधिमरण के अनुष्ठान में लगानी चाहिए।

आदि पुराण में राजा महाबल की कथा में लिखा है-

महाबल ने अवधिज्ञानी मुनि से अपनी शेष आयु एक मास की जानकर समाधिमरण में चित्त लगाया। आठ दिन तक तो उसने घर के चैत्यालय में महापूजा की। तदनंतर उसने सिद्धवरकूट चैत्यालय जा, वहां सिद्धप्रतिमा की पूजाकर सन्यास धारण किया। उसने गुरु की साक्षी से जीवनपर्यंत के लिए आहार, पानी, देह की ममता व बाह्याभ्यंतर परिग्रहों का त्याग कर दिया। उस वक्त वह मुनि के समान मालूम पड़ता था। उसने प्रायोपगमन सन्यास लिया था। इस प्रकार वह 22 दिन तक सल्लेखना विधि में रहकर अंत में प्राण त्यागकर दूसरे स्वर्ग में ललितांग देव हुआ।

इस कथा में भी महाबल के मुनि बनने की बात न लिखकर यही लिखा है कि वह मुनि के समान जान पड़ता था। (देखो पर्व 5 का श्लोक 232)

आचार्य जिनसेन ने आदि पुराण के पर्व 38 लोक 161 में ऐसा लिखा है कि-आचार्य को चाहिए कि-वह किसी को मुनि दीक्षा देवे तो शुभ मुहूर्त देखकर देवे। अन्यथा उस आचार्य ही को संघबाह्य कर देना चाहिए।

इस कथन से मृत्यु समय में मुनि दीक्षा देने का स्पष्ट निषेध सिद्ध होता है। क्योंकि अक्वल तो दीक्षा लेने वाले का मरण समय होना यही अशुभ है। दूसरे उस दिन सभी को शुभ मुहूर्त का संयोग मिल जाए यह भी संभव नहीं है।

अंतसमय में मुनि दीक्षा लेने देने का कथन जैन-शास्त्रों में कहीं नहीं है। इस विषय का वर्णन शास्त्रों में जिस ढंग से किया है उसका मतलब लोगों ने भ्रम से मुनि दीक्षा लेना समझ लिया है। जबकि वैसे मतलब वहां के कथन का निकलता नहीं है। इस प्रकार का वर्णन पं. आशाधरजी कृत

सागारधर्मांमृत के 8 वें अध्याय में निम्न प्रकार पाया जाता है-

त्रिस्थानदोषयुक्तायाप्यापवादिकलिंगिने ।

महाव्रतार्थिने दद्याल्लिंगमौत्सर्गिकं तदा ॥ 35 ॥

निर्यापके समर्प्यं स्वं भक्त्यारोप्य महाव्रतम् ।

निश्चेलो भावयेदन्यस्त्वनारोपितमेव तत् ॥ 44 ॥

अर्थ-अंडकोश और लिंगेन्द्रिय संबंधी तीन दोष युक्त भी हो तथापि आपवादिक लिंगी कहिए 11 वीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक जो कि आर्य कहलाता है वह यदि महाव्रत का अर्थी हो तो उसे समाधिमरण के अवसर में आचार्य मुनि के 4 (लिंगों-चिह्नों) में से एक नग्नलिंग को देवे। अर्थात् वस्त्र छुड़ाकर उसको नग्न बना दे।

जब वह निचेल हो जाए तो अपने को भक्ति से निर्यापक कहिए समाधिमरण कराने वाले आचार्य के अधीन करके और उनके वचनों से अपने में महाव्रतों की भावना भावे। यह उत्कृष्ट श्रावक यदि लज्जा आदि के वश से समाधिमरण के वक्त वस्त्र त्याग न कर सके तो वह अपने में महाव्रतों का आरोपण नहीं कर सकता है। क्योंकि सग्रंथ को महाव्रतों के आरोपण करने का अधिकार नहीं है। उसे बिना आरोपित किए ही महाव्रतों की भावना भानी चाहिए।

भगवती आराधना की गाथा 80 में नग्नत्व, लौंच, पिच्छिका धारण, और शरीर संस्कार हीनता ऐसा 4 चिह्न (लिंग) मुनि के बताए हैं।

इस प्रकरण में आशाधर ने श्लोक 38 में ऐसा कहा है कि-

औत्सर्गिकमन्यद्वा लिंगमुक्तं जिनैः स्त्रियाः ।

पुंवत्तदिष्यते मृत्युकाले स्वल्पीकृतोपधेः ॥ 38 ॥

अर्थ-जिनेन्द्रों ने स्त्री के जो औत्सर्गिक और आपवादिक खिंम कहा है। उसमें औत्सर्गिक लिंग श्रुतज्ञों ने मृत्युकाल में पुरुष की तरह एकांतवसतिका आदि सामग्री के होने पर वस्त्र मात्र को भी त्याग देने वाली क्षुल्लिका के लिए माना है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार औत्सर्गिक लिंग धारण करने वाले पुरुष के मरण समय में औत्सर्गिक लिंग ही कहा है। और आपवादिक लिंग वाले के लिए ऊपर जैसा कथन किया है वैसा ही स्त्री के लिए भी समझना चाहिए। अर्थात् योग्य स्थान मिलने पर आर्यिका नग्न लिंग धारण करे और क्षुल्लिका भी नग्न लिंग धारण करे। किन्तु क्षुल्लिका यदि समृद्धिशाली घर की हो यानी राजघराने आदि की हो और नग्न होने में उसे शर्म आती हो तो वह नग्न न होकर क्षुल्लिका के वेष में ही रह कर समाधि मरण करे।

ऊपर के श्लोकों में क्षुल्लिक पुरुष के लिंग धारण का कथन किया है और इस श्लोक में स्त्री क्षुल्लिका के लिए कथन किया है। श्लोक में प्रयुक्त 'स्वल्पीकृतोपधेः' वाक्य

का अर्थ यहां क्षुल्लिका मालूम पड़ता है। पं. आशाधर जी ने इसी कथन को भगवती आराधना की गाथा 81 की अपनी मूलाराधना टीका में निम्न प्रकार किया है।

स्त्रियां अपि औत्सर्गिकं आगमऽभिहितं, परिग्रहमल्पं कुर्वन्त्या इति योज्यं । औत्सर्गिकं तपस्विनीनां, शाटकमात्र परिग्रहे ऽपि तत्र ममत्व परित्यागादुपचारतो नैग्रन्थव्यवहारणानुसरणात् । आपवादिकं श्राविकाणां तथा विधममत्व परित्यागाभावादुपचारतो ऽपि नैग्रन्थ्य व्यवहारानवतारात् । तत्र संन्यास काले लिंग तपस्विनीनामयोग्यस्थाने प्राप्तं इतरासां पुंसामिवेति योज्यम् । इदमत्र तात्पर्यं-तपस्विनी मृत्युकाले योग्ये स्थाने वस्त्रमात्रमपि त्यजति । अन्या तु यदि योग्यं स्थानं लभते, यदि च महर्द्धिका सलज्जा मिथ्यात्व प्रचुर ज्ञातिश्च न, तदा पुंवद्वस्त्रमपि मुंचति । नो चेत् प्राग्लिंगेनैव प्रियते ।

अर्थ-आगम में स्त्री के भी उत्सर्ग लिंग बताया है वह अल्पपरिग्रहवाली श्राविका (क्षुल्लिका) के संन्यासकाल में बताया है। आर्यिकाओं के तो वैसे ही औत्सर्गिक लिंग होता है। क्योंकि उनके साड़ी मात्र में भी ममत्व न होने से उपचार से उनमें निर्ग्रन्थता का व्यवहार है। जबकि क्षुल्लिका श्राविकाओं के उस प्रकार से ममत्व का त्याग नहीं होता इसलिए उनमें उपचार से भी निर्ग्रन्थता का व्यवहार नहीं है। अतः उनके आपवादिक लिंग होता है। संन्यासकाल में योग्य स्थान आदि न मिले तो आर्यिकाओं के पूर्वकालीन लिंग ही रहता है। तथा क्षुल्लिकाओं के संन्यासकाल में क्षुल्लिक पुरुषों की तरह उत्सर्ग लिंग और अपवाद लिंग दोनों होते हैं। तात्पर्य यह है कि-आर्यिका मृत्युकाल में योग्य स्थान के मिलने पर वस्त्र मात्र को भी त्याग देती है और क्षुल्लिका योग्य स्थान मिलने पर यदि महर्द्धिका, सलज्जा और कट्टर मिथ्यात्वी जाति की न हो तो वह भी क्षुल्लिक पुरुष की तरह वस्त्रों को त्याग कर नग्न हो जाती है। और यदि वह सलज्जा आदि हो तो समाधि मरण के समय में अपने पूर्वलिंग को धारण की हुई ही मरती है।

क्षुल्लिका वह कहलाती है जो आर्यिका से कुछ अधिक वस्त्र रखती है और जितना रखती है उतने में उसके ममत्व भाव रहता है। मस्तक के बाल कैंची आदि से उतरवाती है। उसे क्षुल्लिक पुरुष के स्थानापन्न समझनी चाहिए। उसकी गणना श्राविकाओं में की जाती है। और आर्यिका के अपनी साड़ी में ममत्व नहीं होता इसलिए वह सवस्त्रा होकर भी मुनि के स्थानापन्न समझी जाती है और इसी से शास्त्रों में उसके उपचार से महाव्रत माना है।

इन उपर्युक्त उल्लेखों से यही प्रगट होता है कि-उत्कृष्ट श्रावकों (क्षुल्लिकों) के लिए समाधिमरण के अवसर में नग्न हो जाने की शास्त्राज्ञा है। जिससे कि उनमें महाव्रतों की

स्थापना करके उन्हें आरोपित महाव्रती बना सके। इसका अर्थ मुनि दीक्षा नहीं है। क्योंकि ऐसा करना तो आर्यिका व क्षुल्लिका श्राविका के लिए भी लिखा है तो क्या नग्न हो जाने से इनकी भी मुनि दीक्षा मान ली जावे? और तब क्या उनके छठा गुणस्थान समझा जावे? नग्न हो जाना मात्र कोई मुनि दीक्षा नहीं है। मुनि दीक्षा में लौंच कराया जाता है, पिच्छिका पकड़ाई जाती है। पर यहां ऐसा कुछ नहीं लिखा है। न यहां उनको मुनि नाम से लिखा है। तब यह कैसे माना जावे कि समाधिमरण के वक्त में क्षुल्लिक को मुनि दीक्षा देने का विधान है। यदि कहो कि क्षुल्लिक के लौंच पिच्छी तो पहिले से ही चली आ रही है जिससे नहीं लिखा है। इसका उत्तर यह है कि भले ही पहिले से चली आवे तब भी मुनि दीक्षा के वक्त भी लौंचादि करा कर ही दीक्षा दिए जाने का नियम है। और सभी क्षुल्लिक लौंच करें ऐसी भी शास्त्राज्ञा नहीं है। इसलिए यह भी नहीं कह सकते कि क्षुल्लिक लौंच पहिले से ही चला आ रहा है। यह विचारने के योग्य है कि- उक्त श्लोक 44 में क्षुल्लिक में महाव्रतों का आरोप करना लिखा है। इस आरोप शब्द पर भी ध्यान देना चाहिए। रत्नकरंडश्रावकाचार के 'आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निः शेषम्' ॥ 125 ॥ पद्य में भी सभी महाव्रतों का आरोप करना ही लिखा है। मेधावी के श्रावकाचार में (अधिकार 10 श्लोक 54) तथा चामुण्डरायकृत चारित्रसार में भी आरोप ही लिखा है। सभी ग्रन्थों में एक आरोप के सिवा दूसरा शब्द प्रयोग न करने में भी कोई रहस्य और इससे यही प्रतिभाषित होता है कि -सन्यास काल में नग्न होने का अर्थ मुनि बनने का नहीं है। जिस पुरुष की कामेन्द्रिय में चर्मरहितत्व आदि दोष होते हैं उसको मुनिदीक्षा देने का आगम में निषेध किया है। उस प्रकार के दोषवाले क्षुल्लिक के ऊपर उद्धृत श्लोक 35 में सन्यास काल में नग्नलिंग दिया गया है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि-यहां की इस नग्नता का मुनिदीक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं है। चारित्रसार में लिखा है कि गूढ ब्रह्मचारी नग्न वेष में रहकर ही विद्याध्ययन करता है। इसलिए सभी जगह नग्न हो जाने का अर्थ मुनि बनना नहीं है। सागरार्धमामृत के इसी 8वें अध्याय के अन्त में आराधक के उत्तम, मध्यम, जघन्य तीन भेद करके उनकी आराधनाओं का फल बताते हुए लिखा है कि- "उत्तम आराधक मुनि उसी भव में मोक्ष जाता है। मध्यम आराधक मुनि इन्द्रादि पद को प्राप्त होता है। और वर्तमान काल के मुनि जो कि जघन्य आराधक हैं वे आठवें भव में मोक्ष पाते हैं। इतना कथन किये बाद आगे आशाधर जी लिखते हैं कि यह तो मुनियों की आराधना अर्थात् समाधिमरण का फल बताया। अब श्रावकों की आराधना का फल बताते हैं। जो कि श्रमणलिंग धारण कर समाधिमरण करते हैं।" इस कथन से बिल्कुल स्पष्ट हो

जाता है कि समाधि मरण के समय में जो श्रावक नग्न लिंग धारण करके आरोपित महाव्रती बनते हैं उनको आशाधरजी ने मुनि नहीं माना है। यहां यह भी ध्यान रखना चाहिए कि- आशाधर ने जो यहां नग्नलिंग धारणकर आरोपित महाव्रती बनने की बात लिखी है। वह भी आपवादिकलिंगी कहिये क्षुल्लिक के लिये लिखी है न कि 7 वीं प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी आदि के लिए। पं. मेधावी ने भी स्वरचित धर्मसंग्रह श्रावकाचार के 9वें अध्याय में उत्कृष्ट श्रावक को अपवादलिंगी कहा है। यथा-

उत्कृष्टः श्रावको यः प्राक्क्षुल्लोऽत्रैव सूचितः ।

स चापवादलिंगी च वानप्रस्थोऽपि नामतः ॥ 280 ॥

अर्थ - उत्कृष्ट श्रावक जिसे कि पहिले इस ग्रन्थ में क्षुल्लिक नाम से सूचित किया है उसी का नाम अपवादलिंगी और वानप्रस्थ भी है।

इस प्रकार पं. आशाधर जी के उक्त विवेचन से यही फलितार्थ निकलता है कि- जिस श्रावक को समाधिमरण के अवसर में नग्नलिंग दिया जाता है वह 11वीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक होता है और वह आरोपित महाव्रती माना जाता है मुनि नहीं। उस समय की नग्नता मुनि अवस्था की नहीं है। किंतु सन्यास अवस्था की है। ऐसा समझना चाहिए।

इसलिये आजकल जो 11वीं प्रतिमाधारी ही नहीं सातवीं प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी तक को भी समाधिमरण के समय में साक्षात् मुनि बनाकर व उसका नाम ही बदलकर मुनिपने का नाम रख दिया जाता है यह सब शास्त्र सम्मत नहीं है। मनमानी है। मैंने यह लेख मननशील विद्वानों के विचारार्थ प्रस्तुत किया है। मेरा लिखना कहां तक सही है इसका निर्णय वे करेंगे। निर्णय करते समय यह ख्याल रखेंगे कि- आशाधर ने समाधिमरण के इस प्रकरण में नग्नलिंग की चर्चा की है, न कि मुनि होने की। क्योंकि यहां इसी के साथ में आर्यिका व श्राविका के सम्बन्ध में नग्नता का कथन किया है। इससे यही सिद्ध होता है कि यहां जो वर्णन किया है वह नग्नलिंग का वर्णन किया है मुनि होने का वर्णन नहीं किया है। अतः उसका अभिप्राय मुनिदीक्षा समझना उचित नहीं है। नग्न हुए बाद भी उसको महाव्रत देने की बात नहीं लिखी है। ऊपर उद्धृत आशाधर के 44 वें श्लोक पर ध्यान दीजिए। उसमें वह निर्यापक के वचनों से अपने में महाव्रतों का आरोपण करके महाव्रतों की भावना भावे, ऐसा लिखा है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह नग्न हुए बाद "मैं महाव्रती हूँ" ऐसी कल्पना कर लेवे। साक्षात् महाव्रती मुनि अपने को न माने। रत्नकरंडश्रावकाचार के उक्त उद्धरण में आये "आरोपयेत्" की व्याख्या प्रभाचन्द्र ने भी महाव्रतों की स्थापना करना की है। धारण करना अर्थ नहीं किया है।

'जैन निबन्ध रत्नावली' से साभार

श्रमणचर्या का अभिन्न अंग अनियतविहार

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन

श्रमण का जीवन सर्वश्रेष्ठ है, इसीलिए गृहस्थ व्रतों का पालन करता हुआ प्रतिपल प्रतिक्षण यही चिन्तन करता है कि वह दिन कब आयेगा जिस दिन मैं श्रमणधर्म को ग्रहण कर अपने जीवन को सार्थक करूँगा। चिन्तन मनन के फलस्वरूप गृहस्थ गृहवास का त्याग कर रत्नत्रयधारी निर्ग्रन्थ वीतरागी गुरु की शरण में पहुँचकर स्वेच्छाचार विरोधिनी जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार करके श्रमण साधु के स्वरूप को प्राप्त करता है। जीवन को मंगलमय बनाता है, उसका मूल उद्देश्य विभाव से हटकर सवभाव में रमण करना, प्रदर्शन न कर आत्मदर्शन करना, केवल आत्मविश्वास के पथ पर आगे बढ़ता रहना होता है।

मूल उद्देश्य को ध्यान में रखकर नव दीक्षित साधु अपने गुरु के साथ संघीय परम्पराओं का पालन करते हुए देशदेशान्तर में विहार करता है। आत्मा की साधना में लीन रहते हुए धर्म प्रभावना करता है। दीक्षा लेने के बाद साधु का विहार निरन्तर होता है। साधु के विहार के प्रसंग में आचार्य वट्टकेर स्वामी लिखते हैं-

गहिदत्थेय विहारो विदिओ-गिहिदत्थ संसिदो चव ।
एत्तो तदिय विहारो णाणुण्णादो जिणवरेहि ॥ 140 ॥

मूलाचार विहार के गृहीतार्थ विहार और अगृहीतार्थ विहार ऐसे दो भेद हैं, इनके सिवाय जिनेश्वरों ने विहार की आज्ञा नहीं दी है।

जीवादि तत्त्वों के स्वरूप के ज्ञाता मुनियों का जो चरित्र का पालन करते हुए देशान्तर में विहार करते हैं, वह गृहीतार्थविहार है और जीवादि तत्त्वों को न जानकर चरित्र का पालन करते हुए जो मुनियों का विहार है, वह अगृहीतार्थसंश्रितविहार है। इन दोनों प्रकार के विहारों के अर्थ को समझकर यह ज्ञात होता है कि साधु को एक स्थान पर ही रहने का विधान नहीं है, वह तो एक गाँव से दूसरे गाँव या एक नगर से दूसरे नगर में जाता रहता है, मूलाचार में कहा है-गाँव में एक दिन तथा नगर में पांच दिन अधिक से अधिक रहकर विहार कर जाता है जैसा कि आचार्य सकलकीर्ति ने लिखा है- प्रासुक स्थान में रहने वाले विविक्त एकान्त स्थान में निवास करने वाले मुनि किसी गाँव में एक दिन रहते हैं और नगर में पांच दिन रहते हैं। चर्यापरीषद् के वर्णन प्रसंग में यही बात भट्टकलंकदेव ने कही है। श्वेताम्बर साहित्य में भी यही बात आयी है। निर्ग्रन्थमुनि को एक

स्थान में रहने की अनुमति नहीं दी गई है। वह तो भारूण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त होकर ग्रामानुग्राम विहार करता है। विहार की दृष्टि से काल दो भागों में विभक्त है एक वर्षावास और ऋतुबद्ध काल। वर्षाकाल में श्रमण को साढ़े तीन माह या चार माह तक एक स्थान पर रूकना चाहिए। हाँ कार्तिक कृष्ण अमावस्या को चातुर्मास पूर्ण हो जाए तो कार्तिक शुक्ला पंचमी तक तो अवश्य ऐसे स्थान पर रूकना चाहिए इसके बाद कार्तिक पूर्णिमा तक भी धर्मप्रभावना या अन्य अपरिहार्य कार्यवश उसी स्थान पर साधु रूक सकते हैं। दूसरा ऋतु काल है जिसमें स्वाध्याय आदि के निमित्त गुरु आज्ञा पूर्वक एक माह रूकने का भी प्रावधान है। कहा भी है- वसन्तादि छहों ऋतुओं में से प्रत्येक ऋतु में एक मास पर्यन्त ही एक स्थान पर साधु रहे। अनगार धर्म 9/68-69 वर्षाकालस्य चतुर्षु मासेषु एकत्रैवावस्थानं श्रमणत्यागः ॥ भ. अ. वि. टी. 421 ॥ अर्थात् वर्षाकाल के चार माहों में श्रमण का त्याग कर एक ही स्थान पर आवास करना चाहिए। वर्षा ऋतु में चार माह एक स्थान पर रूकने का कारण है, वर्षा ऋतु में चारों ओर हरियाली होने से मार्गों के अवरूद्ध होने तथा पृथ्वी त्रस-स्थावर जीवों की संख्या बढ़ जाने से अंतिम संयम आदि का पालन कठिन हो जाता है। अनगारधर्मांमृत में वर्षावास के सम्बन्ध में कहा है कि- आषाढ शुक्ला, चतुर्दशी की रात्रि के प्रथम प्रहर में चैत्यभक्ति आदि करके वर्षायोग ग्रहण करना चाहिए तथा कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि के पिछले प्रहर में चैत्यभक्ति आदि करके वर्षायोग छोड़ना चाहिए। अनगारधर्मांमृत 9-68-69

गामेयरादिवासी णयरे पंचातवासिणों धीरा ।

सवणा फासुविहारी विविक्त एगांतवासी ॥

॥ मू. आ. - 487 ॥

बोधपाहुड़ टीका में इस प्रकार कहा है कि - वसितै वा ग्राम नगरादौ वा स्थामव्यं नगरे पंचरात्रे स्थातव्यं ग्रामे विशेषण न स्थातव्यम 42-107 ॥ अर्थात् नगर में पांचरात्रि और गांव में विशेष नही रहना चाहिए। वर्षावास समाप्त होने पर श्रमण को विहार तो करना ही होता है किन्तु यदि वर्षा का आधिक्य हो नदी नालों के तीव्र प्रवाह के कारण मार्ग दुर्गम हो गये हों, कीचड़ आदि की अधिकता हो या बीमारी आदि का भी कारण हो तो साधु वर्षायोग के बाद भी नगर ग्राम के जिनमन्दिर में ठहरे रह सकते हैं।

आचार्यवर्य सिद्धान्तानुसार संग्रह में वर्षाकाल में मुनि को सीमित क्षेत्र से बाहर जाने की परिस्थितियों को भी दर्शाते हैं-

द्वादश योजनान्येव वर्षाकाले-भिगच्छति ।

यदि संघस्य कार्येण तदा शुद्धो न दुष्यति ॥ 10-60 ॥

वर्षाकाल में संघ के कार्य के लिए यदि मुनि बारह योजन तक कहीं जायेगा तो उसका प्रायश्चित ही नहीं है और यदि वाद- विवाद से महासंघ के नाश होने का प्रसंग हो तो वर्षाकाल में भी देशान्तर जाना दोषयुक्त नहीं है ।

भगवती आराधना में तो अनियतविहार नामक साधु की चर्या का पृथक अधिकार ही है । इसमें अनियतविहार द्वारा साधु के दर्शन की शुद्धता, स्थितिकरण, भावना, अतिशयार्थ-कुशलता, क्षेत्रपरिमार्गणा गुणों की उत्पत्ति बतायी है ।

अनेक क्षेत्रों में विहार करने से साधु तीर्थकरों की जन्म, तप, ज्ञान और समवशरण की भूमियों के दर्शन और ध्यान करने से अपने सम्यक्त्व को निर्मल रखता है । जगह-जगह विहार के काल में अन्य वीतरागी साधकों से मिलने पर संयम की अभिवृद्धि होती है उनके उत्तम चरित्र को जानकर स्वयं उत्तम चरित्र पालन के प्रति उत्साह बढ़ता है । सदाकाल विहार करते रहने पर धर्म में प्रीति बढ़ती है । पाप से भयभीत रहता है । सूत्रार्थ में प्रवीणता आती है । दूसरे के संयम को देखने से धर्मारोहकों की धर्मराधना को देखने से स्वयं को धर्म में स्थितिकरण की भावना जगती है । निरन्तर विहार करने वाले साधु को चर्या परीषह होती है, कंकर मिट्टी पैरों में चुभती है । पादत्राण रहित चरणों से मार्ग में चलने पर जो वेदना उत्पन्न होती है उसे संक्लेश भाव रहित सहन करने पर चर्यापरीषह सहन होती है जिससे संयम में वृद्धि होती है । क्षुधा, तृषा, शीत उष्ण परीषह सहन की शक्ति बढ़ती है । अनेक क्षेत्रों में विहार करने वाले साधु को अतिशय रूप अर्थ में प्रवीणता भी आ जाती है । जैसा कि कहा गया है-

णाणादेसे कुसलो णाणादेसेगदाण सत्थाएं ।

अभिलाव अत्थकुसलो होदि य देसप्पवेसेण ॥

॥ भग. आ. 153 ॥

नवीन-नवीन स्थानों पर विहार करने से अनेक देशों के रीति-रिवाज का ज्ञान होता है लोगों के चरित्र पालन की योग्यता-अयोग्यता की जानकारी होती है । अनेक मंदिरों आदि स्थानों पर विराजमान शास्त्रों में प्रवीणता होती है । अर्थ बोध होता है । अनेक आचार्यों के दर्शन लाभ से अतिशय रूप से अर्थ में कुशलता भी होती है ।

देशान्तरों में विहार करने वाले साधु को उस क्षेत्र का परिज्ञान होता है जो क्षेत्र कर्दम, अकुर त्रस जीवों की बहुलता से रहित हैं । जीव बाधा रहित गमन योग्य क्षेत्र को भी जान लेता है । जिस क्षेत्र में आहार पान मिलना सुलभ होता है और सल्लेखना आदि के योग्य होता है उसका भी ज्ञान होता है । इसलिए अनियतविहार आवश्यक है । इसी सम्बन्ध में और भी कहा है-

प्रेक्ष्यन्ते बहुदेश संश्रयवशात्संवेगिताद्यांसय

स्तीर्थाधीश्वर केवली द्वयमही निर्वाणभूम्यादयः ।

स्थैर्यं धैर्यं विरागतादिषु गुणेष्व्वाचार्यवर्ये,

क्षणाद्विद्या वित्तसमागमाधिगमो नूनार्थ सार्थस्य च ॥

अनियतविहार करने में अनेक देशों का आश्रय लेना पड़ता है जिसमें संवेग वैराग्य आदि अनेक गुणों को धारण करने वाले अनेक आसजनों के पूज्य पुरुषों के दर्शन होते हैं । तीर्थकरों को जहाँ- जहाँ केवल ज्ञान प्रगट हुआ है अथवा जहाँ- जहाँ निर्वाण प्राप्त होता है उन समस्त तीर्थक्षेत्रों के दर्शन प्राप्त होते हैं । अनेक उत्तमोत्तम आचार्यों के दर्शन से धीरता वैराग्य आदि उत्तम गुणों से स्थिरता प्राप्त होती है और विद्यारूपी धन की प्राप्ति होने से निश्चित अर्थों के समूह का ज्ञान होता है ।

अनियत विहारी साधक की सल्लेखना भी ठीक तरह से होती है क्योंकि वह जगह-जगह विहार करते रहने के कारण उन स्थानों में भी परिचित होता है, जहाँ धार्मिकता होती है । एकान्त, शान्त, निराकुलता रह सकती है । नियतवासी प्रायः स्थान विषयक अथवा अपने निकटस्थ लोगों के प्रति रागभाव रखने लगते हैं अतः दूसरे अपरिचित स्थान और मनुष्यों के बीच पहुँचकर साधक भली प्रकार से संल्लेखना ग्रहण कर आत्मकल्याण कर सकता है कहा भी है-

सदरूपं बहुसूरी भक्तिकयुतं क्षमादि दोषोज्झितं,

क्षेत्रपात्रमीक्ष्यते तनुपरित्यागस्य निःसंगता ।

सर्वस्मिन्नपि चेतनेतर बहिः संगे स्वशिष्यादिके,

गर्वस्वयापचयः परीषहजयः सल्लेखना चोत्तमा ॥

मुनिराज को सल्लेखना धारण करने के लिए ऐसे क्षेत्र देखने चाहिए, जहाँ पर राजा उत्तम धार्मिक हो, जहाँ के लोग सब आचार्यादिकों की बहुत भक्ति करने वाले हों । जहाँ पर निर्धन और दरिद्र प्रजा न हो । इसी प्रकार पात्र ऐसे देखने चाहिए जिनके शरीर त्याग करने में भी निर्मोहपना हो तथा अपने शिष्यादिकों में भी अभिमान न हो और जो परिषहों को अच्छी तरह जीतने वाले हों ऐसा क्षेत्र और पात्रों को अच्छी तरह देखकर सल्लेखना धारण करनी चाहिए ।

उक्त व्यवस्था अनियतविहारी साधु की ही बन सकती

है, जो एक स्थान पर रहते हैं, उनकी सल्लेखना समाधि भी आगमोक्त रीति से संभव है? अतः वर्तमान में मुनि/आर्यिका/त्यागी/व्रती सभी को विचार करना चाहिए कि जीवन भर की सार्थकता निहित स्वार्थ के कारण खो न जाये।

मूलाचार प्रदीप में कहा है- प्रासुक स्थान में रहने वाले और विविक्त एकान्त स्थान में निवास करने वाले मुनि किसी गाँव में एक दिन रहते हैं और नगर में पाँच दिन रहते हैं। सर्वथा एकान्त स्थान को ढूँढने वाले और शुक्लध्यान में अपना मन लगाने वाले मुनिराज इस लोक में गंध-गज (मदोन्मत्त) हाथी के समान ध्यान के आनन्द का महासुख प्राप्त करते हैं। (31-32)

आचार्य शिवार्य वसतिका आदि में ममत्व के अभाव को भी अनियतविहार मानते हैं-

वसधीसु य उवधीसु य गामे णयरे गणे य सण्णजणे ।
सव्वत्थ अपडिबद्धो समासदो अणियदविहारो ॥

॥भग. आ. 153 ॥

वसतिका में, उपकरण में, ग्राम में, नगर में, संघ में श्रावकों में ममता के बन्धन को न प्राप्त होने वाला अनियतविहार करने वाला साधु है। अर्थात् जो ऐसा नहीं मानता कि वह वसतिका मेरी है, मैं इसका स्वामी हूँ सभी परद्रव्यों, परक्षेत्रों, परकालों से बंधा हूँ वह अनियमितविहार करने वाला है।

उक्त सभी लाभ अनियतविहार करने वाले को ही प्राप्त हो सकते हैं, जो एक स्थान पर रहकर धर्म का पालन करना चाहें, वह संभव नहीं है।

साधु को निरन्तर विहारी होने के कारण श्रेष्ठ कहा है कवि ऋषभदास ने कहा है-

स्त्री का मायके रहना, पुरुष का ससुराल में रहना और साधुओं का एक स्थान पर तीनों ही अनिष्टकारी है।

हिन्दी के किसी कवि ने कहा है-

बहता पानी निर्मला, बन्धा सो गन्दा होय ।

साधु तो रमता भला दाग न लागे कोय ॥

साधुव्रती श्रेष्ठ कहा गया है जो एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थानों को जाता है। साधु के निवास के विषय में शास्त्रों में विशद विवेचन किया गया है। वे मुनिराज पहाड़ों पर ही पर्यकासन, अर्धपर्यकासन व उत्कृष्ट वीरासन धारण कर व हाथी की सूंड के समान आसन लगाकर अथवा मगर के मुख का सा आसन लगाकर अथवा एक करवट से लेटकर अथवा कठिन आसनों को धारण पूर्ण रात्रि बिता देते हैं।

भट्टकलंकदेव साधु के योग्य निवास के सम्बन्ध में

लिखते हैं 'शय्या और आसन की शुद्धि में तत्पर साधु को स्त्री, क्षुद्र, चोर, महापापी, जुआरी, शराबी और पक्षियों को पकड़ने वाले पापी जनों के स्थान में वास नहीं करना चाहिए तथा श्रृंगार विकार, आभूषण, उज्ज्वल वेश, वेश्या की क्रीड़ा से अभिप्राय (सुन्दर) गीत, नृत्य, वादित्र आदि से व्याप्त शाला आदि में निवास का त्याग करना चाहिए। शयनासन शुद्धि वाले हैं संयतों को तो अकृत्रिम (प्राकृतिक) पर्वत की गुफा वृक्ष' से नहीं बनाए गये हों और जिनके बनने बनाने में अपनी ओर से किसी तरह का आरम्भ नहीं हुआ है ऐसे स्वभाविक रीति से (अकृत्रिम) बने हुए पर्वत की गुफाएं या वृक्षों के कोटर आदि तथा बनवाये हुए सूने मकान वसतिका आदि अथवा जिनमें रहना छोड़ दिया गया है अथवा छुड़ा दिया गया है ऐसे मोचितावास स्थानों में रहना चाहिए।

वर्तमान में वसतिकों के निर्माण की होड़ लगी हुई है, चाहे वह किसी भी नाम से निर्मित करायी जाय। हाँ गृहस्थ का आवास आठ दस कमरों का हो सकता है। किन्तु मुनि की वसतिकाएँ बहुमंजली इमारतों से युक्त विशाल परिसर में नाना विभागों से अलंकृत होने से ही गौरव है। तभी तो मुनि या आर्यिका पचास लाख या करोड़ों की परियोजना में जुटे हुए हैं। ऐसा करने में ही तो पूर्वाचार्यों के कथन का उल्लंघन कर अपना श्रेष्ठत्व स्थापित करने की सफलता है, क्योंकि पूर्वाचार्यों ने तो गिरि कंदरा या वन में निवास करने को कहा है- शून्यघर पर्वतगुफा, वृक्षमूल, अकृत्रिमघर, श्मशानभूमि, भयानक वन, उद्यानघर, नदी का किनारा आदि उपयुक्त वसतिकाएँ हैं। बोधपाहुड़ में भी कहा है इनके अतिरिक्त अनुदिष्ट देव मन्दिर, धर्मशालाएं, शिक्षाघर आदि भी उपयुक्त वसितिकाएँ हैं।

जिनेन्द्रमन्दिरे सारे स्थितिं कुर्वन्ति येऽङ्गिनः ।

तेभ्यः संवर्द्धते धर्मो धर्मात्संपत् परानृणाम् ॥

श्रेष्ठ जिनमन्दिर में जो मुनिराज आदि ठहरते हैं, उनसे धर्म बढ़ता है और धर्म से मनुष्यों को श्रेष्ठ सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और भी कहा गया है-

मुनिः कश्चित् स्थानं रचयति यतो जैनभवने,

विधत्ते व्याख्यानं यदवगमतो धर्मनिरताः ।

भवन्तो भव्यौघा भवजलधिमुत्तीर्यसुखिनर-

ततस्तत्कारी किं जनयति जनो यन्न सुकृतम् ॥

यतश्च जिनमन्दिर में कोई मुनिराज आकर ठहरते हैं, तथा व्याख्यान करते हैं, जिनके ज्ञान ने भव्य जीवों के समूह धर्म में लीन होते हुए संसार समुद्र को पारकर सुखी होते हैं। अतः जिनमन्दिर के निर्माण कराने वाला पुरुष

ऐसा कौन पुण्य है, जिसे न करवाता हो।

साधु के योग्य निवास के सम्बन्ध में आचार्य अकलंक यह लिखते हैं - संयतेन शयनासन शुद्धिपरेण। स्त्रीक्षुद्रचौरपानाक्षशौण्ड शाकुनिकादिपापजनवासावर्ज्याः श्रृंगारविकारभूषणोज्ज्वल वेषवेश्याक्रीडाभिरामगीत नृत्यवादिताकुलशालादयश्चपरिहर्तव्या। अकृत्रिमगिरिगुहातरूकोटरारयः कृत्रिमाश्च शून्यागारादयो मुक्तमोचितावासा अनात्मोदेशनिर्वृतिता निराम्भा सेव्या। तत्त्वार्थवार्तिक -9/5 पृ. 552

शय्या और आसन की शुद्धि में तत्पर साधु को स्त्री, क्षुद्र, चोर, मद्यपायी, जुआरी, शराबी और पक्षियों को पकड़ने वाले आदि पापी जनों के स्थान में वास नहीं करना चाहिए तथा श्रृंगार, आभूषण, उज्ज्वल वेष, वेश की क्रीड़ा से अभिराम (सुन्दर) गीत, नृत्य, वादित्र आदि से व्याप्त शाला आदि में रहने का त्याग करना चाहिए। शासनासन शुद्धि वाले संयतों को तो अकृत्रिम (प्राकृतिक) पर्वत की गुफा, वृक्ष के कोटर आदि तथा कृत्रिम शून्यागार छोड़े हुए घर आदि ऐसे स्थानों पर रहना चाहिए, जो उनके उद्देश्य से नहीं बनाए गये हों और जिनमें उनके लिए कोई आरम्भ न किया गया हो।

मुनियों का निवास तीन प्रकार का होता है। स्थान-खड़े होना, आसन-बैठना और शयन-सोना।

जैनाचार्य मठ, आश्रम आदि में स्थायी निवास करने की मुनि/आर्यिका को अनुमति प्रदान नहीं करते हैं। न जाने वर्तमान में यह प्रवृत्ति क्यों बढ़ रही है कि साधु/साध्वी/त्यागी व्रती अपनी देख-रेख में कोई न कोई आश्रम/मठ/संस्थान/संस्था का निर्माण कराकर उसी को अपना निवास बना रहे हैं। आस्था से जकड़ी समाज साधु/साध्वी/त्यागी/व्रती के कहने पर शक्ति के अनुसार अर्थ सहयोग करती है और उनकी बलवती इच्छाओं को पूर्ण करना अपना कर्तव्य समझती है। यदि कोई प्रबुद्ध समाज के मध्य कहता है कि अपरिग्रही साधक को परिग्रही बनाकर धर्म की हानि क्यों की जा रही है। साधुओं को एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए गृहस्थों के साथ रहने पर परीषह भी आ जाते हैं जिससे साधक की साधना में दोष लगने की सम्भावना रहती है। इसका उत्तर समाज के पास होता है कि ये मुनि/आर्यिका अपने साथ तो नहीं ले जाएंगे। रहेगी तो अपने पास अपने लोगों के ही कार्य आएगी। इनके निमित्त से बाहर का रुपया हमारे गृह स्थान या तीर्थ स्थान पर लग रहा है। इसी लोभ, कषायवश स्थानीय समाज साधु/साध्वी/

त्यागी/व्रती का पूर्ण बढ़-चढ़ कर सहयोग करते हैं। यह सहयोग नहीं है अपितु श्रमण संस्कृति को दोषपूर्ण बनाने के कारण आस योग ही है, क्योंकि यह व्यवस्था साधुओं को भी प्रलोभन में फंसा देती है और याचना भी करनी पड़ती है।

साधु सोचने को तैयार नहीं कि याचनाशील होने पर मैं मोक्षमार्ग से च्युत हो जाऊंगा। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने याचना करने वाले को मोक्षमार्ग से पृथक माना है।

जे पंच चेल सत्ता गथग्गाहीय जायणासीला।

अथा कम्ममि रया ते चत्ता मोक्खमग्गमि ॥ 79 मो. पाहुड्जो पांच प्रकार के वस्त्रों में आसक्त हैं, परिग्रह को ग्रहण करने वाले हैं, याचना करते हैं तथा अधःकर्म निंदकर्म में रत हैं, वे मुनि मोक्षमार्ग से पतित हैं। परिग्रही साधक विशुद्धी को भी प्राप्त नहीं होता है, जैसा कि कहा है-

वैषम्ययत्यप्यं दिव्यं स्वीयमनिद्यं यद् द्रव्यम् ॥

निश्चयनयस्य विषयगृहीव परिग्रही नाव्यम् ॥

यह परिग्रहवान् मुनि भी निश्चयनय के विषयभूत अनिन्दनीय दिव्य और अविनाशी स्वकीय द्रव्य को गृहस्थ के समान प्राप्त नहीं होता अर्थात् जिस प्रकार परिग्रही गृहस्थ शुद्ध आत्मा को प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार परिग्रही साधु भी नहीं प्राप्त होता है। अतः विशुद्धि को बढ़ाने के लिए साधुओं का एक स्थान विशेष पर जीवन भर या लम्बी अवधि रुकने का मोह नहीं होना चाहिए जिससे उनका अनियमित विहार चलता रहेगा और वे आगम की मर्यादा की सुरक्षा करते हुए मोक्षमार्ग की महती प्रभावना कर सकेंगे।

सन्दर्भ

1. मूलाचार प्रदीप 31
2. तत्त्वार्थवार्तिक भा. पृ. 595
3. बृहत्कल्पभाष्य 1-36
4. दंसणसोधी तिदिकरणभावणा अदिसयत्तकुसलत्तं। खेतपरिमग्गणावि य अणियदवा से गुणा होंति ॥ भग. आराधना गा. 147
5. वही पृष्ठ 148, 149, 150
6. संविग्गदरे पासिय पियधम्मदरे अवज्जभीरुदरे। संयमवि पियथिरधम्मो साधू विहरतओ होदि ॥ भग. आराधना गा. 151
7. वही गा. 152
8. सुत्तत्थथिरीकरणं अदिसयिदत्थाण होदि उवलद्धि। आयरियदंसणेण दु तह्मा सेवेज्ज आयरियं। भग. आराधना गा. 155
9. संजदजणस्स य जहिं फासुविहारो य सुलभवुत्ती य। तं खेतं विरहन्तो णाहिदि सल्लेहणाजोग्गं ॥ भग. आराधना गा. 157
10. मूलाचार समाचार अधिकार।
11. मूलाचार प्रदीप 31
12. तत्त्वार्थवार्तिक भाग-2 पृष्ठ 595

(आर्यिका सुपाश्र्वमती माताजी कृत हिन्दी टीका)

प्राचीन जैन ग्रन्थकारों द्वारा कुन्दकुन्द के नाम-अनुल्लेख का कारण

प्रो. रतनचन्द्र जैन

यह आश्चर्य की बात है कि जिन महान् आचार्य कुन्दकुन्द ने जिनशासन को विकृति से बचाने के लिए श्रमणधर्म और श्रावकधर्म के जिनोक्त स्वरूप को प्रकाशित करनेवाली अमर साहित्यरचना की और आगमोक्त श्रमणधर्म का अक्षरशः पालन करनेवाली श्रमणपरम्परा का पुनरुत्थान किया, जिसके फलस्वरूप उनका नाम भगवान् महावीर और गौतम गणधर के बाद मंगलरूप में स्मरणीय बन गया, उनके नाम का उल्लेख बारहवीं शताब्दी ई.के पूर्व तक किसी भी दिगम्बराचार्य ने अपने ग्रन्थ में नहीं किया। आठवीं शती ई. के वीरसेन स्वामी ने धवला-जयधवला में तत्त्वार्थसूत्र के कर्ता गृध्रपिच्छाचार्य, तिलोयपण्णतीकार आचार्य यतिवृषभ, समन्तभद्र, पूज्यपाद स्वामी आदि के नाम का उल्लेख तो किया है, किन्तु कुन्दकुन्द के नाम का निर्देश कहीं नहीं किया, जब कि उनके द्वारा रचित समयसारादि ग्रन्थों को आगमप्रमाण के रूप में स्वीकार करते हुए उनसे अनेक गाथाएँ धवलादि में उद्धृत कर अपने कथन की पुष्टि की है। उनके शिष्य आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण में समन्तभद्र, सिद्धसेन, पूज्यपाद देवनन्दी, जटासिंहनन्दी, भट्ट अकलंक, वीरसेन स्वामी आदि का स्तवन किया है, किन्तु उनकी जिह्वा पर कुन्दकुन्द का नाम नहीं आया। पुत्राटसंघी जिनसेन ने भी हरिवंशपुराण में उपर्युक्त आचार्यों की स्तुति की है, किन्तु इनकी लेखनी से भी कुन्दकुन्द का नाम नहीं उतरा।

इसका कारण क्या है? यह विचारणीय है। श्वेताम्बर विद्वान् प्रो. ढाकी ने एक अनोखी कल्पना की है। वे लिखते हैं कि दसवीं शताब्दी ई. (आचार्य अमृतचन्द्र के समय) के पूर्व तक न तो किसी दिगम्बर आचार्य ने अपने ग्रन्थ में कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख किया है, न ही उनके ग्रन्थों पर टीका लिखी गई। इससे सिद्ध होता है कि वे आचार्य अमृतचन्द्र के सौ-दो-सौ वर्ष पूर्व ही हुए थे (The Date of Kundakundacharya, Aspects of Jainology, Vol. III, P. 187-189)

स्व. पं. सुखलाल जी संघवी (श्वेताम्बर विद्वान्) और स्व. पं. नाथूराम जी प्रेमी के बीच इस विषय में पत्रव्यवहार हुआ था। संघवी जी के पत्र के उत्तर में प्रेमी जी ने लिखा था “श्रुतावतार, आदिपुराण, हरिवंशपुराण, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

आदि प्राचीन ग्रन्थों में जो आचार्य-परम्परा दी हुई है, उसमें उमास्वाति का बिलकुल उल्लेख नहीं है।..... आदिपुराण, हरिवंशपुराण आदि के कर्ताओं ने कुन्दकुन्द का भी उल्लेख नहीं किया है, यह विचारणीय बात है। मेरी समझ में कुन्दकुन्द एक खास आम्नाय या सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उन्होंने जैनधर्म को वेदान्त के साँचे में ढाला था। जान पड़ता है कि जिनसेन आदि के समय तक उनका मत सर्वमान्य नहीं हुआ, इसीलिए उनके प्रति उन्हें कोई आदरभाव नहीं था।” (पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोधसंस्थान वाराणसी द्वारा प्रकाशित ‘तत्त्वार्थसूत्र’ की प्रस्तावना, पृ. 73-74)।

इस पर आपत्ति करते हुए प्रो. ढाकी प्रश्न करते हैं कि यदि कुन्दकुन्द की नई विचारधारा से अन्य आचार्य सहमत नहीं थे, तो उन्होंने उसका प्रतिवाद क्यों नहीं किया और असहमत होते हुए भी उनके ग्रन्थों का अनुसरण क्यों किया जाता रहा?

प्रो. ढाकी का यह प्रश्न उचित है। मैं भी प्रेमी जी से सहमत नहीं हूँ। कुन्दकुन्द के ‘वोच्छामि समयपाहुडमिडमो सुयकेवलीभणियं’ ये वचन प्रमाण हैं कि उन्होंने किसी नये आम्नाय या सम्प्रदाय का प्रवर्तन नहीं किया था अर्थात् जैन धर्म को वेदान्त के साँचे में नहीं ढाला था, बल्कि श्रुतकेवली भद्रबाहु ने जैसा उपदेश दिया था, वैसा ही उन्होंने अपने प्राभृतग्रन्थों में प्ररूपित किया है तथा कोई भी दिगम्बराचार्य उनके द्वारा प्ररूपित वस्तुतत्त्व से असहमत नहीं था, अपितु सभी आचार्य उनके वचनों को प्रमाणस्वरूप मानते थे। इसीलिए भगवती-आराधना, मूलाचार, तिलोयपण्णती, सर्वार्थसिद्धि, भगवती-आराधना की विजयोदया टीका, धवला-जयधवला आदि में कुन्दकुन्द की अनेक गाथाएँ ज्यों की त्यों आत्मसात् की गयी हैं, अथवा प्रमाणस्वरूप उद्धृत की गयी हैं। तत्त्वार्थसूत्र की रचना तो प्रमुखतः कुन्दकुन्द के ही ग्रन्थों पर आधारित है।

वीरसेन स्वामी ने धवला टीका में न केवल कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है, अपितु उनके वचन प्रमाणरूप में उद्धृत किये हैं। और इस प्रकार उन्होंने ‘वक्तृप्रामाण्याद् वचन प्रामाण्यम्’ इस स्वमान्य न्याय के अनुसार कुन्दकुन्द को प्रामाणिक वक्ता स्वीकार किया है। फिर भी उन्होंने उनके नाम की चर्चा नहीं की। इसका एक

ही कारण प्रतीत होता है। वह कारण है समयसारादि ग्रन्थों में उनके कर्ता कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख न होना (बारसाणुवेक्खा में प्रक्षिप्त है) और मुनिसंघों में भी यह प्रसिद्ध न हो पाना या इस प्रसिद्धि का लुप्त हो जाना कि उक्त ग्रन्थों के कर्ता कुन्दकुन्द हैं। जैसे 'तत्त्वार्थसूत्र' में उसके कर्ता गृध्रपिच्छ के नाम का उल्लेख न होने से और यह प्रसिद्ध न होने से कि उसके कर्ता गृध्रपिच्छ हैं, टीकाकार पूज्यपाद स्वामी (5वीं शती ई.) और भट्ट अकलंक देव (7 वीं शती ई.) भी उनसे अपरिचित रहे आये, जिसके फलस्वरूप वे अपनी टीकाओं में तत्त्वार्थसूत्रकार के रूप में उनका नाम निर्दिष्ट करने में असमर्थ रहे, वैसे ही समयसारादि ग्रन्थों में कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख न होने से तथा यह प्रसिद्ध न होने से कि उन ग्रन्थों के रचयिता कुन्दकुन्द हैं, दसवीं शताब्दी ई. के टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र भी इस तथ्य से अनभिज्ञ रहे कि समयसारादि महान ग्रन्थों के रचयिता कुन्दकुन्द हैं जिनसे कुन्दकुन्दान्वय नाम का विशाल अन्वय प्रसूत हुआ।

जिस प्रकार बहुत समय बाद आठवीं शती ई. में धवला टीका के कर्ता वीरसेन स्वामी ने किसी प्राचीन लिखित स्रोत से यह ज्ञात होने पर कि तत्त्वार्थसूत्र के कर्ता आचार्य गृध्रपिच्छ हैं, धवला-टीका में इसका उल्लेख किया है, उसी प्रकार बारहवीं शती ई. में किसी प्राचीन ग्रन्थादि से यह जानकारी प्राप्त होने पर कि समयसारादि ग्रन्थों के निर्माता वही महान् कुन्दकुन्द हैं, जिनके नाम से कुन्दकुन्दान्वय प्रवाहित हुआ है, आचार्य जयसेन ने अपनी टीकाओं में उन ग्रन्थों के निर्माता के रूप में आचार्य कुन्दकुन्द के नाम की चर्चा की है। आठवीं शती ई. से पहले के सभी ग्रन्थकार और टीकाकार इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि 'तत्त्वार्थसूत्र' के कर्ता आचार्य गृध्रपिच्छ हैं और बारहवीं शताब्दी ई. के पूर्ववर्ती समस्त ग्रन्थकर्ताओं और टीकाकारों को यह ज्ञान नहीं था कि समयसारादि ग्रन्थ आचार्य कुन्दकुन्द की लेखनी से प्रसूत हुए हैं। इसका प्रमाण 'प्रवचनसार' की निम्नलिखित गाथा की अमृतचन्द्रकृत टीका में मिलता है-

एस सुरासुर मणुसिंदवंदिदं धोदघाडकम्ममलं।

पणमामि वड्डमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥1/1 ॥

अर्थ : यह मैं उन धर्मतीर्थ के कर्ता श्री वर्धमान स्वामी को प्रमाण करता हूँ, जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों के द्वारा वन्दित हैं तथा जिन्होंने घातिकर्मों के मल को धो डाला है।

यहाँ 'एस' (एषः अहम्=यह मैं) सर्वनाम 'प्रवचनसार' ग्रन्थ के कर्ता के लिए प्रयुक्त हुआ है। टीकाकार अमृतचन्द्र सूरि को इसकी व्याख्या ग्रन्थकार कुन्दकुन्द के नाम का निर्देश करके करनी चाहिए थी, जैसे "यह मैं कुन्दकुन्द उन वर्धमान स्वामी को प्रणाम करता हूँ.....।" किन्तु उन्होंने "एष स्वसंवेदनप्रत्यक्षो दर्शनज्ञानसामान्यात्माहं श्री वर्धमानदेवं प्रणमामि" (यह मैं स्वसंवेदन प्रत्यक्ष दर्शनज्ञानस्वरूप आत्मा श्री वर्धमान स्वामी को प्रणाम करता हूँ), इन शब्दों में की है। अर्थात् उन्होंने कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नहीं किया। इसका कारण न तो यह हो सकता है कि कुन्दकुन्द से उन्हें कोई द्वेष था और न यह कि टीकाकार द्वारा ग्रन्थकर्ता के नाम का उल्लेख करने की परम्परा नहीं थी। अन्यथानुपपत्ति से केवल यही कारण प्रकट होता है कि टीकाकार अमृतचन्द्र सूरि इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि 'प्रवचनसार' के कर्ता वही कुन्दकुन्द हैं, जिनके नाम से प्रसिद्ध कुन्दकुन्दान्वय प्रचलित हुआ है।

आचार्य जयसेन ने 'एस' सर्वनाम शिवकुमार नामक राजा के लिए प्रयुक्त माना है, जो संगत नहीं है, क्योंकि ग्रन्थ की आद्य गाथाएँ मंगलाचरणरूप हैं और उनका प्रयोग ग्रन्थकार ही करता है। स्वयं जयसेन ने प्रवचनसार के द्वितीय अधिकार की अन्तिम गाथा की तात्पर्यवृत्ति में लिखा है कि आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचनसार के कर्ता हैं और शिवकुमार महाराज श्रोता। उन्होंने समयसार तथा पंचास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति के आरंभ में भी यह उल्लेख कर दिया है कि इन ग्रन्थों की रचना आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा हुई है। किन्तु अमृतचन्द्र सूरि ने तीनों ग्रन्थों की टीका में कहीं भी कुन्दकुन्ददेव द्वारा उनके रचे जाने का उल्लेख नहीं किया। इससे स्पष्ट है कि आचार्य अमृतचन्द्र को यह ज्ञात नहीं था कि समयसारादि ग्रन्थों के रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द हैं और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उनके समय में मुनिसंघों में भी उक्त प्रकार की प्रसिद्धि नहीं थी।

आचार्य अमृतचन्द्र के समकालीन 'दर्शनसार' के कर्ता देवसेन ने केवल इतना लिखा है कि "विदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर सीमन्धर स्वामी के समवसरण में जाकर श्री पद्मनन्दीनाथ (कुन्दकुन्दस्वामी) ने जो दिव्य ज्ञान प्राप्त किया था, उसके द्वारा यदि वे बोध न देते, तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?" (गाथा 43)। लगभग इसी समय (10 वीं शती ई.) के आचार्य इन्द्रनन्दी ने 'श्रुतावतार' में कहा है कि कुण्डकुन्दपुर के पद्मनन्दी ने षट्खण्डागम के आदि के तीन खण्डों पर 'परिकर्म' नामक ग्रन्थ की रचना की।

किन्तु इन दोनों आचार्यों ने कुन्दकुन्द के द्वारा समयसारादि ग्रन्थ रचे जाने की बात नहीं कही। सर्वप्रथम ईसा की बारहवीं सदी में आचार्य जयसेन ने कुन्दकुन्द को उक्त ग्रन्थों का रचयिता बतलाया है और उनके कुछ समय बाद 12 वीं शती ई. में ही हुए माइल्ल धवल ने लिखा है कि मैंने कुन्दकुन्दाचार्य रचित शास्त्रों से सारभूत अर्थ ग्रहणकर द्रव्यस्वभाव-प्रकाशक-नयचक्र की रचना की है। उन्होंने पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थों को आगम कहकर, उनसे अनेक उद्धरण भी दिये हैं। इससे ज्ञात होता है कि आचार्य जयसेन को कुन्दकुन्द के समयसारादि ग्रन्थों के रचयिता होने की जानकारी किसी प्राचीन लिखित स्रोत से प्राप्त हुई थी। इस तरह यह बात समझ में आ जाती है कि ईसा की बारहवीं शतब्दी से पहले के ग्रन्थकारों ने कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख क्यों नहीं किया। इसका एकमात्र कारण उनका इस बात से अनभिज्ञ होना था कि समयसारादि ग्रन्थों के कर्ता वही कुन्दकुन्द हैं, जिनके नाम से कुन्दकुन्दान्वय प्रसूत हुआ है।

अतः दसवीं शती ई. के पूर्व तक कुन्दकुन्द के ग्रन्थों पर टीका न लिखा जाना तथा बारहवीं शती ई. के पूर्व तक ग्रन्थकारों द्वारा कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख न किया जाना इस बात का प्रमाण नहीं है कि कुन्दकुन्द दसवीं

शताब्दी ई. के सौ दो सौ वर्ष पूर्व ही हुए थे। कुन्दकुन्द के ग्रन्थों पर पहली टीका भले ही दसवीं शती ई. में लिखी गई हो, पर उनके ग्रन्थों की गाथाएँ ईसा की पहली, दूसरी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं शताब्दियों के भगवती आराधना, मूलाचार, तिलोयपण्णत्ती, सर्वार्थसिद्धि, परमात्मप्रकाश, विजयोदया टीका, धवला-जयधवला आदि ग्रन्थों में आत्मसात् की गयी हैं अथवा प्रमाण रूप में उद्धृत की गई हैं। यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि कुन्दकुन्द ईसापूर्वोत्तर (ईसापूर्व और ईसोत्तर) प्रथम शताब्दी में हुए थे।

जहाँ तक टीका न लिखे जाने का प्रश्न है, उसका कारण यह प्रतीत होता है कि कुन्दकुन्द के कुछ ही समय बाद जैन सिद्धांत को संक्षेप एवं सरल भाषा में प्रस्तुत करनेवाला तत्त्वार्थसूत्र जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सामने आ गया। वह इतना लोकप्रिय हुआ कि उसने आचार्यों को उसी पर टीकाएँ लिखने लिए प्रेरित किया। इसीलिए हम देखते हैं कि पूज्यपाद स्वामी के पहले से ही उस पर टीकाएँ लिखी जाने लगीं और यह क्रम श्रुतसागर सूरि तक अनवरत चलता रहा। फलस्वरूप 10वीं शती ई. के पूर्व तक कुन्दकुन्द के अध्यात्मप्रधान ग्रन्थों पर टीका का अवसर नहीं आ पाया।

ए/2 मानसरोवर, शाहपुरा, भोपाल

बालवार्ता

वह देना सीख रही है

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन

एक सज्जन परदेश में एक घर के सामने पहुँचे। उन्हें जोर की भूख लगी थी। उन्होंने उस घर की गृहिणी से निवेदन किया कि 'मुझे भूख लगी है, कुछ भिक्षा दीजिए।' उनका यह कथन सुनकर गृहिणी गालियाँ देती हुई किबाड़ बन्द कर घर के अन्दर चली गयी।

वह सज्जन भी वापिस आ गये, मानो साधुता की कसौटी पर स्वयं को कसकर आ रहे हों। उनके साथ उनका एक साथी और था, जो विस्मय और ग्लानि से यह दृश्य देख अवाक् था।

दूसरे दिन वे सज्जन पुनः उस गृहिणी के घर के सामने पहुँचे और पुनः याचना की। आज वे अपने साथ पात्र भी लाये थे, अतः भोजन की इच्छा के साथ पात्र आगे कर दिया।

गृहिणी ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा, "ठहरो, मैं अभी देती हूँ," और अन्दर से राख लाकर पात्र में डाल दी तथा बड़बड़ाते हुए अन्दर चली गयी। खैर, वे सज्जन

अपने ठिकाने पर वापिस आ गये।

तीसरे दिन उन सज्जन ने पुनः उसी गृहिणी के घर की ओर रुख किया तो उनके साथी से रहा नहीं गया। वह बोला, "गुरुदेव! उस गृहिणी ने दो बार आपका अपमान किया, फिर भी आप उससे ही भिक्षा की आशा रखते हैं?"

साथी के प्रश्न सुनकर वे सज्जन बोले, "भाई, सहनशीलता ही सज्जनता है। तुमने देखा कि पहले दिन भोजन माँगने पर उसने गालियाँ दीं, दूसरे दिन भोजन माँगने पर राख दी। मेरा विश्वास है कि आज तीसरे दिन वह भोजन भी देगी। वास्तव में वह देना (दान देना) सीख रही है। इसलिए मैं शान्तचित्त एवं आशान्वित हूँ।"

वास्तविकता भी यही है जिनके संस्कार दानशीलता के नहीं हैं, वे दें भी कैसे? दान के संस्कार सिखाना भी आवश्यक है।

एल- 65, न्यू इन्दिरानगर, बुरहानपुर, म.प्र.

परिग्रह से निवृत्ति का साधन - उत्तम त्याग धर्म

डॉ नरेन्द्र जैन भारती

जैन धर्म में उत्तम त्याग का महत्वपूर्ण स्थान है। आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि त्याग के बिना कोई भी प्राणी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। दिगम्बर जैन धर्म में दिगम्बर साधुओं का नग्न विचरण यह सन्देश जन-जन को देता है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए सांसारिक प्रलोभनों का तो त्याग करना ही पड़ता है अन्तरंग में क्रोध मान, माया, लोभ तथा राग-द्वेष का त्याग अति आवश्यक है। उत्तम त्याग धर्म हमें इसी बात की प्रेरणा देता है।

जैन आचार्यों ने एक वाक्य में ही त्याग को समझा दिया है कि अप्राप्त भोगों की इच्छा न करना और प्राप्त सुखों से विमुख हो जाना त्याग है। प्रवचन-सार में आचार्य जिनसेन कहते हैं- 'निजशुद्धात्म परिग्रहं कृत्वा बाह्याभ्यन्तर परिग्रहः निवृत्ति त्यागः।' अर्थात् निज शुद्धात्म के परिग्रह पूर्वक बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से निवृत्ति त्याग है। वारस अणुवेक्खा में कहा गया है-

णिब्बे गतियं भावइ मोहं चइऊण सव्व दव्वेसु।

जो तस्स हवेच्चागो इदि भविदं जिणवरि देहि॥

जो जीव सम्पूर्ण परद्रव्यों से मोह छोड़कर संसार, शरीर और भोगों से उदासीन परिणाम रखता है उसके त्याग धर्म होता है। राजवार्तिक में लिखा है-पर की प्रीति के लिए अपनी वस्तु को देना त्याग है। 'संयतस्य योग्यं ज्ञानादि दानं त्यागः' अर्थात् संयत को संयम की रक्षा एवं वृद्धि में साधक, योग्य उपकरणों को देना त्याग है। त्याग आत्मा का स्वभाव होने से इसे धर्म कहा गया है-

जैन धर्म में दो तरह की स्थिति देखी जाती है जिसके अपने-अपने नियम तथा कायदे हैं। इस आधार पर धर्म दो तरह का हो जाता है। 1- मुनिधर्म और श्रावक धर्म। धर्म का उद्देश्य एक ही है- वह है मोक्षप्राप्ति। दशलक्षण धर्म मुनि और श्रावक दोनों के लिए हैं। मुनिगण अन्तरंग और बाह्य परिग्रह से रहित हों इसीलिए त्याग आवश्यक है। बाह्य परिग्रह तो मुनिगण मुनिदीक्षा के साथ ही छोड़ देते हैं परन्तु राग-द्वेष बना रहता है या बना रह सकता है इसलिए मुनिगण पर्युषण पर्व में उत्तम त्याग धर्म के दिन विशेष रूप से रागद्वेष के त्याग हेतु पुनः संकल्पित होने की भावना भाते हैं इसलिए रागद्वेष से स्वयं को छुड़ाने तथा वस्तुओं के प्रति राग, के अभाव को त्याग कहा गया। यह रागद्वेष

अनादिकाल से आत्मा के साथ लगा हुआ है, तथा जीव को कषाय सहित करता है उत्तम त्याग धर्म हमें कषाय, रागद्वेष से हटाकर आत्महित में लगाता है।

श्रावक या गृहस्थ तो परिग्रही होता है अतः उसे बाह्य परिग्रह का भी त्याग करना है जिसे वह श्रावक धर्म में वर्णित योग्य पात्र में दानादि देकर परिग्रह का त्याग करता है इसीलिए दान भी त्याग है परन्तु इसमें भी ममत्वभाव का त्याग तथा निरभिमानता होनी चाहिए दान में भी ममत्व भाव, रागभाव हटाया जाता है। दान की सार्थकता तभी होती है जब 'अनुग्रहार्थं स्वस्याति सर्गो दानम्' की भावना करते हुए उस दान के प्रति हमारे मन में किसी प्रकार का मोह या सम्मान तथा प्रतिष्ठा का लोभ न हो। पूज्यपाद स्वामी ने कहा है- परोपकारः सम्यग्ज्ञानादिवृद्धि स्वोपकारः पुण्य संचयः जिन्हें दान दिया जाता है उनके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानादि की वृद्धि होती है, यही अपना उपकार है और दान देने से जो पुण्य का संचय होता है वह अपना उपकार है। मुनि और श्रावकों को दृष्टिगत रखते हुए पं. दानतराय जी ने पूजन में कहा है-

'उत्तम त्याग कह्यौ जग सारा औषधि शास्त्र, अभय, आहारा।

निहचै राग-द्वेष निरवारे ज्ञाता दोनों दान सम्हारै॥'

संसार में औषधि, शास्त्र, अभय और आहार दान को श्रेष्ठ कहा गया है और निश्चय से राग-द्वेष को छोड़ने को त्याग कहा गया है। जो ज्ञानी होते हैं वे यथाशक्ति दोनों प्रकारों को सम्भालते हैं।

औषधि दान - ज्ञान, ध्यान और तपस्या रत साधुओं को पीड़ा होने तथा किसी जीव मात्र को रोग से दुःखी देखकर उसकी पीड़ा को दूर करने के लिए औषधि आदि देना औषधि दान है।

शास्त्र दान - ज्ञानवृद्धि के लिए ऐसे ग्रन्थों को देना, जिससे आत्मा का कल्याण हो सके, जिनवाणी का प्रचार हो, शास्त्र दान कहलाता है।

अभय दान - छह काय के जीवों की रक्षा करना उन्हें भयमुक्त करना तथा अपने प्राणों का घात करने वाले जीव को भी क्षमा कर देना अभय दान है।

आहार दान - मुनियों को नवधाभक्ति पूर्वक आहार देना तथा संसारी जीवों की भूख शान्त करने के लिए भोजन

देना, आहार दान कहलाता है।

इन चारों दानों के प्रभाव से मनुष्य या तो मोक्ष प्राप्त करता है, यदि यह संभव न हो पाता तो देवगति में चला जाता है तथा उत्तम भोगभूमि में भी जन्म ले सकता है। अतः श्रावक को दान अवश्य करना चाहिए। कविवर धानतराय जी कहते हैं-

दान चार प्रकार, चार संघ को दीजिए।

धन बिजुरी उनहार नरभव लाहो लीजिए।

चतुर्विध संघ को चार प्रकार का दान देकर नरभव का लाभ लेना चाहिए। धन बिजली के समान पलायन करने वाला है जिसका मन धन में लगा रहता है वे नरतन की संभाल नहीं कर पाते और जिनका तन त्याग में नहीं लगता वे वैभव को प्राप्त नहीं कर पाते अतः तन, मन और धन का सदुपयोग कर आत्महित करना चाहिए। स्वामी समन्तभद्र ने दान की महत्ता बताते हुए कहा है-

क्षितिगतमिव वट बीजं, पात्रगतं दानमल्पमपि काले।

फलतिच्छाया विभवं बहुफलमिष्टं शरीर भू-ताम् ॥

अर्थात् योग्य समय में सुयोग्य पात्र के लिए दिया हुआ थोड़ा सा दान भी उत्तम भूमि में पड़े हुए बीज के सदृश प्राणियों के लिए माहात्म्य और वैभव से युक्त बहुत से इच्छित फल को प्राप्त करता है। रमणसार में कहा गया है कि - सप्तांग राज्य, नवनिधि का भंडार, छह अंगों से युक्त सेना, चौदह रत्न, छियानवे हजार स्त्रियों का वैभव प्राप्त

होना सुपात्र दान का फल है। अतः सत्पात्र में दान करना चाहिए। कंबीर ने कहा है-

पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।

दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम ॥

यदि व्यक्ति दान नहीं करता तो उसका धन नष्ट हो जाता है। नीतिकार कहते हैं-

दानंभोगोनाशस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।

यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥

अर्थात् दान, उपभोग और नाश, धन की ये तीन अवस्थाएं होती हैं, जो न दान देता है न उपभोग करता है उसके धन की तीसरी (नाश) अवस्था होती है। धन खर्च कहाँ करना चाहिए, इस सम्बन्ध में कहा गया है-

जिनबिम्ब जिनागारं जिनयात्रा प्रतिष्ठितम्।

दानं पूजा च सिद्धान्त लेखनं क्षेत्र सप्तकम् ॥

अर्थात् जिनबिम्ब स्थापन 2-जिनालय निर्माण 3-तीर्थक्षेत्रों की यात्रा 4- पंचकल्याणक प्रतिष्ठा 5- पात्र को चार प्रकार का दान 6- जिनपूजा 7- सिद्धान्त लेखन।

अतः प्रत्येक व्यक्ति का यह पुनीत कर्तव्य है कि हमें त्याग धर्म को अंगीकार कर मन, वचन, काय की शुद्धता पूर्वक शास्त्रोक्त विधि से सत्पात्र में दान देकर अपनी चंचला लक्ष्मी का उपयोग कर पुण्यार्जन करना चाहिए और राग-द्वेष को समाप्त कर सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए सार्थक प्रयास करना चाहिए। ए-27, न्यूनर्मदा विहार, सनावद

तीर्थों में मांसाहार पर पाबंदी उचित

श्री प्रकाश गुप्त विधि सलाहकार

क्या अंडों के विक्रय में कोई प्रतिबंध किसी नगरपालिका क्षेत्र में लगाया जा सकता है। यह विचित्र सा प्रश्न उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक अपील में उठ खड़ा हुआ। ओम प्रकाश प्रति उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा एक रिट याचिका निरस्त किये जाने के निर्णय के विरुद्ध यह अपील उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत की गई। ऋषिकेश क्षेत्र में बहुत से मंदिर हैं। इस संदर्भ में कुछ नागरिक संस्थाओं और संगठनों की ओर से नगरपालिका के समक्ष यह प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया कि नगर के सार्वजनिक स्थानों पर अंडों के विक्रय पर प्रतिबंध लगा दिया जाना चाहिए।

अधिसूचना के द्वारा कहा गया है कि सार्वजनिक स्थानों पर और सार्वजनिक दृष्टि में नजर आने वाले स्थान पर कोई भी गोशत या मछली का विक्रय नहीं किया जायेगा। सड़कों, होटलों, ढाबों, जलपान गृहों, धर्मशालाओं की दुकानों पर भी यह रोक लगाई गई थी। संशोधन प्रतिबंध लागू कर दिया गया। उच्च न्यायालय के समक्ष इस प्रतिबंध को निरस्त किये जाने हेतु रिट

याचिका प्रस्तुत हुई जो अस्वीकृत हो गई। इसके उपरांत उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील में यह कहा गया कि इस प्रकार के पूर्ण प्रतिबंध व्यापारियों के व्यापारिक अधिकारों पर कुठाराघात हैं। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम के प्रावधानों को विचार में लिया और यह पाया कि नगर पालिका को इस प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। जो अधिसूचना जारी की गई है वह पूर्णतया नियमानुसार है। व्यापार का अधिकार नागरिकों को है, लेकिन उस पर उचित प्रतिबंध लगाया जाना गलत नहीं है। हरिद्वार, ऋषिकेश, तीर्थ स्थल हैं। वहां पर सार्वजनिक रूप से मांसाहारी खाद्य पदार्थों के विक्रय पर प्रतिबंध लगाया जाना अनुचित नहीं है। इन तीर्थ स्थलों में बहुत बड़ी संख्या में तीर्थ यात्री आते हैं। उनकी भावनाओं को ध्यान में रखकर नगरपालिका ने प्रतिबंध लगाया है। नगरपालिका क्षेत्र के बाहर अंडे या अन्य मांसाहारी पदार्थों के विक्रय पर कोई रोक नहीं है इस कारण व्यापार को ऐसी कोई हानि नहीं होनी है। यह प्रतिबंध उचित प्रतिबंध की सीमा में आते हैं।

भगवान की जन्मभूमि में अंतर क्यों ?

कैलाश मड़बैया

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के हाल में सम्पन्न अधिवेशन में बहुचर्चित पौराणिक अयोध्या जाने का अवसर मिला। यह सच है कि अयोध्या पूरी तरह राममय है, न तो वहाँ किसी तरह का विवाद है, न ही विवाद की गुंजाइश। हाँ सरकार ने अपना अस्तित्व प्रदर्शित करने के लिए अवश्य इतने धन का अपव्यय किया है कि इन पैसों से राम जन्म भूमि पर विशाल गरिमामय मंदिर तो बन ही सकता था, मुस्लिमों के लिए आलीशान मस्जिद भी।

परन्तु अयोध्या के लोगों से संवाद स्थापित करने और नगर भ्रमण कर ऐसा प्रतीत हुआ कि सचमुच राजनीतिज्ञ बड़ी चीज होते हैं, इतने कि राई को पर्वत बना दें। अब मुस्लिम चाहें भी कि वे मस्जिद की बात छोड़कर मंदिर बनाने में सहयोग करें तो कदाचित् राजनीतिज्ञ ऐसा नहीं होने देंगे और परिस्थितियाँ इतनी जबरदस्त निर्मित हो चुकी हैं कि वहाँ मस्जिद बन भी जाये तो मुसलमान शांति से इबादत नहीं कर सकेंगे। मेरे एक मध्यप्रदेशीय युवा साहित्यकार ने प्रश्न किया कि भाई साहब राम की संगीनों में क्यों रखा गया है? यहाँ तो विरोध है ही नहीं, मंदिर ही क्यों नहीं बना लेते? मैंने कहा-मंदिर बन जायेगा तो वोट क्या तुम दिलवा दोगे? राजनीतिज्ञों को मंदिर थोड़े ही बनवाना है, मुद्दा बनाये रखना है। सोने की मुर्गी का कोई भी समझदार एक दिन ही पेट नहीं फाड़ता है, अवसर-अवसर पर सोने के अण्डे लिए जाते हैं।

सुना तो था कि घूरे के दिन भी फिरते हैं। कभी जहाँ सागर था वहाँ आज शानदार शहर और जहाँ शानदार बस्तियाँ थीं वहाँ आज समुद्र हैं। परन्तु इतिहास और पुराण पढ़ने वाले यह देखकर आश्चर्यचकित होते होंगे कि अयोध्या जैसा प्राचीनतम और गौरवशाली नगर आज प्रगति के गर्त में सचमुच ध्वस्त हो चुका है। ऐसा नहीं कि अल्पसंख्यक मुस्लिमों की ही परेशानियाँ बढ़ी हैं और बढ़ी हैं तो शायद बाबर के विवाद के बढ़ने से, परन्तु परेशानियाँ तो उनकी भी कम नहीं हैं जिन पर कोई विवाद नहीं है। पौराणिक इतिहास साक्षी है कि अयोध्या, वेदों में वर्णित आदिनाथ (केशी), प्रथम जैनतीर्थंकर ऋषभनाथ की जन्म स्थली हैं। सरयू किनारे आज के "स्वर्ग द्वार" मोहल्ले में पुराने थाने के निकट अयोध्या में आदिनाथ जन्म स्थली टोंक के दर्शन मात्र से यह प्रतीत होता है कि आस-पास तो खण्डहर, वीरानगी और सरयू का पावन तट आदि पवित्र चिन्ह भगवान ऋषभदेव की जन्म भूमि की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त हैं।

आश्चर्य तो यह हुआ कि वहाँ दर्शन कर रहे एक श्रावक ने हमें बताया कि मुगल सल्तनत के समय यहाँ भी एक मस्जिद बना दी गई थी परन्तु तब उनके वजीर को यह सपना आया कि वहाँ जमीन में आज भी आदिनाथ स्वामी की जन्म स्थली पर दीपक जल रहा है, श्रीफल एवं कलश विद्यमान है अतः वहाँ इबादत नहीं हो सकती। परन्तु सुल्तान नहीं माना कि जमीन के अन्दर इतने वर्षों तक जलता दीपक रह ही नहीं सकता। परन्तु कुछ समय बाद फिर वजीर को सपना आया कि मस्जिद हटाओ वरना अनर्थ हो सकता है। वजीर फिर सुल्तान के सामने रोया कि खुदाई करा ली जावे तो असलियत सामने आ जायेगी। सुल्तान ने कहा कि यदि जलता दीपक नहीं मिला तो तुम्हें जमीन में उसी जगह गाड़ दिया जायेगा। वजीर ने सोचा अनर्थ तो कैसे भी होना है अतएव सुल्तान की शर्त मानने में ही फायदा है यदि सपना सच हुआ तो प्राण तो बचेंगे ही भगवान के भी दर्शन हो जायेंगे। अंततः काफी जद्दोजहद के बाद खुदाई की गई। और यह क्या सचमुच जमीन के अन्दर जलता हुआ दीपक, कलश और श्रीफल मूर्ति के सामने विद्यमान मिला। परिणामतः न केवल वजीर को बख्शा गया वरन् यह वरदान भी दिया गया कि मुल्लाओं में विवाद न फैले अतः एक रात में जैन धर्मावलंबी जितना निर्माण कर सकें आदिनाथ जन्मस्थली पर कर लें। तब यह ऋषभदेव टोंक का तत्काल निर्माण हो सका। परिक्रमा की गली इसी कारण सबेरे-सबेरे तक बहुत संकीर्ण बन सकी थी।

उपर्युक्त घटना की सत्यता शंकास्पद हो सकती है, परन्तु वेद-पुराण, आगम, ग्रन्थ यदि सही हैं तो यह निर्विवाद है कि भगवान आदिनाथ अर्थात् ऋषभनाथ की यही स्थली वह पावन, पुण्य, प्राचीन और प्रणम्य भूमि है जहाँ से विश्व में जैन धर्म का अभ्युदय हुआ। उन्हीं ऋषभनाथ के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा -

नाभेः पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद् भरतोऽभवत् ।

तस्या नाम्ना वर्षं भारतं चेति कीर्त्यते ॥57 ॥

-स्कंध पुराण, माहेश्वरखण्ड, कौमारखण्ड, (अध्याय 37)

इतिहासकार वासुदेवसरण अग्रवाल ने भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि कर कहा है कि आदिनाथ के ज्येष्ठ पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने "इण्डियन फ्लास्फी" पुस्तक के पृष्ठ 387 पर कहा है कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक लोग तीर्थंकर ऋषभदेव

की पूजा किया करते थे। बौद्ध ग्रन्थ “आर्य मंजुश्री मूल्य काव्य” में कहा गया है कि अयोध्या में जन्मे इन्हीं ऋषभदेव ने हिमालय में तप द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी। और वे जैन धर्म के आद्यदेव थे।

अयोध्या के इस गौरवमयी स्थल पर आज विश्व वन्द्य आदिनाथ स्वामी का महान स्मारक मंदिर स्वरूप में होना चाहिए था, किन्तु विडंबना यह है कि उस प्राचीनतम स्थल जाने का रास्ता तक इतना कण्टकाकीर्ण और पहुंचविहीन है कि स्थानीय लोग भी उसे विस्मृत करते जा रहे हैं। आस-पास के जैन मंदिर के एक पुजारी तक ने मुझे बताया कि जन्म भूमि तो मोहल्ला रामकोट में है। मैंने कहा कि भगवान राम से भी प्राचीन भगवान आदिनाथ स्वामी की जन्म भूमि पहुँचना है। तब उसने कहा कार यहीं रोक दीजिए और मेरे साथ पैदल एक-दो किलोमीटर चलिए, तब उस टोंक पर पहुँच पायेंगे। कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि किसी भारी बरसात में आदिनाथ जन्मस्थली टोंक को भी सरयू का जलप्लावन भविष्य में ले डूबे। कारण साफ है जब तक इस देश में किसी स्थान पर विवाद नहीं होता, तब तक लोग उस ओर ध्यान ही नहीं करते जैसे महापुरुषों के मरने के बाद ही उनकी पूजा का प्रावधान हमारे यहाँ है।

भारतीय समाज और विशेष तौर से सम्पन्न जैन समाज, जो नित नये ऊँचे मंदिर बना रहा है, जमीन से निकली आदिनाथ की प्रतिमाओं पर छोटे-छोटे कस्बों में गगनचुम्बी मंदिर निर्मित कर रहा है, वह समर्थ जैन समाज प्रभु आदिनाथ की जन्मस्थली पर भव्य “आदिनाथ जन्मभूमि” का निर्माण कर इस ऐतिहासिक विरासत को स्मरणीय रूप से वन्दनीय नहीं बना सकता। जहाँ बाद में जन्मे राम के लिए पूरे भारत में आग लगी हो, सरकारें बन-मिट रही हो वहीं राम के हजारों वर्ष पूर्व जन्मे महान श्रमण संस्कृति के प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव की जन्मभूमि की चर्चा तक नहीं। कोई एक ईंट लगाने वाला नहीं। यह न केवल लज्जा-जनक है वरन् दुखद भी। यह केवल वेदों-उपनिषदों में वर्णित आराध्य आदिनाथ भर का प्रश्न नहीं है वरन् भारत को “भारतवर्ष” नामकरण देने वाले भरत चक्रवर्ती के जनक आदिनाथ और भारत को वाणी (शब्द एवं अंक) देने वाली पुत्री के पिता महानतम तपस्वी आदिनाथ की जन्म भूमि के गौरव संरक्षण का प्रश्न है।

अयोध्या में भाग लेने वाले विराट कवि सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए जब मैंने अपने उद्बोधन में यह बात कही तो वहाँ सैकड़ों की संख्या में उपस्थित हिन्दू समाज ने तालियों की गड़गड़ाहट से इसका सम्मान किया। परन्तु जैन

समाज में यह चेतना कैसे लायी जाय यह विचारणीय प्रश्न है। उल्लेखनीय है कि केवल आदिनाथ ही नहीं यहाँ द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ की जन्मभूमि की तो और दुर्गति हो रही है। बक्सरिया टोला-तुलसी नगर में उस पावन स्थल तक पहुंचने के लिए आप को अपावन विष्टा के ढेर से गुजरना होता है। उस टोंक की कोई सुरक्षा भी नहीं है। हमें रास्ता बताने वाले बालक ने बताया कि यहाँ के बड़े मंदिर की जैन कमेटी के अंतर्गत इन जन्मभूमियों की टोंकें आती हैं, परन्तु कमेटी में बाहर के ही संभ्रांत सदस्य हैं, इसीलिए बैठक कभी-कभार ही होती है और इस ओर तो किसी का ध्यान ही नहीं है। हाँ नवनिर्मित बड़े जैन मंदिर में अवश्य जैन समाज के लोग अपने-अपने नाम पटल लगवाकर नित्य नये निर्माण करा रहे हैं वहाँ के पुजारी/व्यवस्थापक ने हमें जैन तीर्थंकरों के जन्म भूमि संबंधी कोई और साहित्य भी उपलब्ध कराने से इंकार कर दिया। कहा कि यहाँ जो फ्री में पत्रिकाएं आ जाती हैं वही कुछ प्रचार सामग्री है। हम कुछ भी साहित्य खरीदने की स्थिति में नहीं हैं। जन्मभूमियों वाला एक छोटा पीला “हैंड पेपर” जरूर उसने दिया जिसमें टोंकों के नाम मोहल्लेवार छपे थे। अयोध्या में अन्य जन्मस्थलियां निम्न प्रकार हैं-

तीर्थंकर सुमतिनाथ की जन्म भूमि कटरा स्थित प्राचीन मंदिर, राजघाट स्थित तीर्थंकर अनंत नाथ की टोंक और चौथे तीर्थंकर अभिनन्दन स्वामी की जन्मस्थलीय अशर्फी भवन सुसहटी में वंदनीय है। और यह एक भी जन्मभूमि उल्लेखनीय रूप से निर्मित नहीं है बस टोंकें भर हैं। एक तीर्थंकर धर्मनाथ की जन्म स्थली फैजाबाद-लखनऊ मार्ग पर भी वंदनीय है।

उपर्युक्त 5 तीर्थंकरों की जन्मभूमि ऐतिहासिक अयोध्या कम से कम जैन समाज के लिए तो शिखर जी और गिरनार जी से कम महत्वपूर्ण नहीं है। पर गिरनार पर तो पण्डों/महंतों ने अनधिकृत कब्जा कर उसे दर्शनविहीन कर दिया है। शिखर जी श्वेतांबरो और दिगंबरो का अखाड़ा बना हुआ है और वीरान होती जा रही 5 तीर्थंकरों की पावन अयोध्या की सुध लेने वाला कोई नहीं है। यहीं निकट लखनऊ में बैठकर जैन समाज के कतिपय महारथी देश के अन्य तीर्थों के संरक्षण की बात ऊँचे स्वर में करते हैं, अनेक पत्र छाप रहे हैं, श्रीमंतों के मिलों में कमेटियां संचालित हो रही हैं, लाखों करोड़ों के वारे-न्यारे हो रहे हैं पर तीर्थंकरों की जन्मभूमियाँ उपेक्षित हो रही हैं। दीपक तले आज भी अंधेरा है। आखिर हमारी इस अकृतज्ञता के लिये उत्तरदायी कौन होगा? और भावी पीढ़ी को हम कैसे बतायेंगे कि हमारे आराध्यों की जन्मभूमि अयोध्या कैसी है?

75, चित्रगुप्त नगर,

कोटरा, भोपाल- 462003

आदर्श जीवन शैली ही धर्म है

प्रो. वी. के. जैन

किसी भी देश, समाज और व्यक्ति का विकास तभी संभव है जब वह अपने धर्म का पालन करे। वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा जाता है और धारण किया जाता है। इसलिए धर्म के स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए कहा जाता है कि धारयतीति धर्मः अर्थात् जिसे धारण किया जाये वह धर्म है। धर्म न तो ओढ़ने की चीज है न ही बिछाने की। धर्म प्रदर्शन अथवा दिखावे की वस्तु नहीं है। धर्म कोई वस्त्र नहीं है कि जिसे पहन लिया वह धार्मिक हो गया। धर्म कोई भाषण भी नहीं है जिसने सुन लिया वह धार्मिक बन गया। कोई भी बाह्य आडम्बर धर्म को उजागर नहीं कर सकता। स्वामी सम्पूर्णानन्द सरस्वती कहते थे कि सूर्य उदय हुआ है यह बात बतानी नहीं पड़ती। प्रकाश और गर्मी स्वयं इस बात का परिचय देते हैं कि सूर्योदय हो गया है। इसी प्रकार धर्मधारण करने वाला धर्मात्मा किसी परिचय का मोहताज नहीं होता। उसका परिचय यह कहकर नहीं दिया जाता कि वह नित्यप्रति अभिषेक करता है, पूजा-अर्चना करता है, स्वाध्याय करता है, लम्बी- लम्बी जाप देता है, प्रतिक्रमण करता है और व्रतोपवास करता है। कोई व्यक्ति धर्मात्मा है या नहीं इसका पता इस बात से लगता है कि उसके चारों ओर रहने वालों पर उसके व्यवहार से कोई सुखदायक प्रभाव पड़ता है या नहीं। अपनी चारों ओर की अवस्थाओं में धर्मात्मा रूपी सूर्य की धूप का गुणगुनाने वाला अहसास है।

हमारे दैनन्दिनी जीवन में ढेर सारे तनाव हैं, जिनसे हमारा जीवन कष्टकर हो रहा है। बहुत सारे बोझ हैं सिर पर जिन्हें हम चाहे- अनचाहे ढोने के लिए अभिशप्त हैं। फिर धर्म को भी हम बोझ के समान ढोयें तो ऐसे धर्म से क्या लाभ? धर्म तो वह है जिसकी सुरभि-जीवनमें प्यार, करुणा, स्नेह, वात्सल्य, सदभाव, श्रद्धा और सहयोग का संचार करती है और जिसमें उक्त भावों के पुष्प प्रस्फुटित हो जायें, वही सच्चा धर्मात्मा है।

वर्तमान में धर्म के नाम पर मानव छोटे- छोटे टुकड़ों में बंट गया है। धर्म की गलत धारणा, त्रुटिपूर्ण व्याख्या और गलत व्यवस्था ने समाज में कड़वाहट, अशांति, तनाव, निराशा, हताशा, असहयोग, द्वेष और घृणा फैलायी है। भाईचारा, सहयोग, प्रेम एवं सहअस्तित्व धर्म की परिभाषा से लगभग बहिष्कृत हो गये हैं। तीर्थकरों की कालजयी

योजना 'जियो और जीने दो' का सर्वत्र अभाव सा परिलक्षित हो रहा है।

वास्तव में धर्म कोई संगठन, समाज, पंथ या सम्प्रदाय नहीं है। धर्म जीवन जीने की आदर्श शैली है। सुख से रहने की, शांति और परमानंद प्राप्त करने की कला है। विश्व में सभी धर्म दुष्कर्मों से बचाने और सत्कर्मों में प्रवृत्त होकर जीवन सँवारने का उपदेश देते हैं। स्वयं की उन्नति के साथ- साथ सबकी उन्नति हमारा ध्येय बन जाना चाहिए। तभी धर्म जीवन में उतर सकेगा तथा हम सही धार्मिक बनकर अच्छे इंसान बनने की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

धर्मच्युत हो जाने पर मनुष्य और समाज के विनाश को कोई टाल नहीं सकता। इस शाश्वत सत्य को समझ लेने पर धर्म का पालन करना आसान हो जाता है।

प्रोफेसर- वाणिज्य विभाग,
शा. स्नाकोत्तर महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.)

ग्रन्थ परिचय

ग्रन्थ का नाम	- मानव धर्म
लेखक	- बा.ब्र.पं. श्री भूरामल शास्त्री (आ.ज्ञानसागर जी)
संस्करण	- प्रथम (मार्च 2004)
प्रतियां	- 2200 (पृष्ठ 224)
लागत मूल्य	- 50/- रूपये
विक्रय मूल्य	- 25/- रूपये
डाक खर्च	- 7/- रूपये
सम्पादन	- डॉ. शीतलचन्द्र जैन, पं. रतनलाल बैनाड़ा, ब्र. भरत जैन।

मानव धर्म आचार्य समंतभद्र स्वामी द्वारा रचित रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर आधारित है। जिसमें बा.ब्र. पं. भूरामल शास्त्री ने (हिन्दी गद्य) में मानव जीवन और आचार की व्याख्या सटीक वाक्यों में छोटे-छोटे उदाहरणों एवं प्रेरक सूक्तियों के माध्यम से की है। भावार्थ मूलश्लोक के नीचे आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा रचित ज्ञानोदयछंद का पद्यानुवाद पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य कृत अन्वयार्थ जोड़ा गया है।

सम्पर्क सूत्र

ब्र. भरत जैन

आचार्य ज्ञानसागर ग्रन्थमाला,

श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान

वीरोदय नगर, सांगानेर, जयपुर (राज.)

फोन नं. 0141-2730552, 3418497

वासना से वात्सल्य की ओर

सुशीला पाटनी

बात उत्तम ब्रह्मचर्य की है। विश्व के समस्त धर्मों में ब्रह्मचर्य को एक पावन और पवित्र धर्म माना गया है। यह समस्त साधनाओं का मूल आधार है। ब्रह्मचर्य को अपनाए बिना आत्मा की उपलब्धि असम्भव है। ब्रह्म का अर्थ है- आत्मा। आत्मा की उपलब्धि के लिए किया जाने वाला आचरण ब्रह्मचर्य है। आत्मोपलब्धि ही परम ब्रह्म की उपलब्धि है। जो व्यक्ति आत्मा के जितना निकट है वह उतना ही बड़ा ब्रह्मचारी है तथा जो आत्मा से जितना दूर है वह उतना ही बड़ा भ्रमचारी है। हमें ब्रह्मचारी और भ्रमचारी में अन्तर करने के लिए चलना है। ब्रह्मचारी का अर्थ है ब्रह्म (ब्रह्ममय आचरण करने वाला) में जीने वाला और भ्रमचारी का अर्थ है भ्रम में जीने वाला। भ्रम के टूटे बिना ब्रह्म को पाना असम्भव है और ब्रह्मा को पाने के लिए उसका ज्ञान होना आवश्यक है। आत्मा की दूरी और नैकट्य से ही ब्रह्म और अब्रह्मचर्य का परिचय मिलता है।

काम और भोग ही हमें हमारी आत्मा से बाहर लाते हैं। कामनाओं से ग्रसित व्यक्ति का चित्त सारी दुनियाँ में दौड़ता रहता है। काम और भोग ही हमें भटकाने वाले तत्व हैं। जिसके अंदर जितनी अधिक कामनाएँ हैं वह आत्मा से अधिक दूर है, तथा जो कामनाओं से जितना अधिक मुक्त है वह आत्मा के उतना ही अधिक नजदीक है। कामनाएँ हमें बहिर्मुखी बनाती हैं और कामना मुक्ति अन्तर्मुखता का आधार है। उसके लिए काम-भोग की आकांक्षाओं से ऊपर उठना अनिवार्य है।

जन्म-जन्मांतरों से मनुष्य काम का दास बना हुआ है। अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए उसने क्या नहीं किया, पर मिला क्या? सिवाय प्यास, अतृप्ति और पीड़ा के? आज तक का हमारा यही अनुभव है कि काम भोग की आकांक्षाओं-वासनाओं से अभी तक मनुष्य को कुछ भी नहीं मिला। भला कोई रेत से तेल निकालना चाहे तो उसे क्या प्राप्त होगा? किन्तु उसके बाद भी हमारी प्रवृत्ति नहीं बदलती। मनुष्य बार-बार उनकी ओर आकर्षित होता है और पुनः अतृप्ति और प्यास में फंसकर रह जाता है। जैसे मृगमरीचिका में मृग को दौड़-दौड़ कर अपने प्राण गँवाने

पड़ते हैं, वैसे ही कामनाओं के पीछे दौड़ता हुआ मनुष्य अपना जीवन बर्बाद कर लेता है, पर पाता कुछ नहीं, पा ही नहीं सकता। क्योंकि हम पूजा में पढ़ते हैं।

काम-भोग से आखिर कौन सा सुख मिलता है? हड्डियों के दो ढांचे के पारस्परिक संघर्ष से क्या मिलने वाला है? कुत्ता हड्डी चबाता है और उसे ऐसा लगता है, मानो उससे रस आ रहा है। सूखी हड्डी में भला कोई रस है? हड्डी चबाते-चबाते उसके मसूड़े छिल जाते हैं, उसके मुख से रक्त निकलता है और उसे लगता है यह रस हड्डी का है। काम भोग का सुख ऐसा ही है। जैसे कोई व्यक्ति खाज खुजलाता है, उस समय उसे थोड़ी देर के लिए आराम मिलता है, पर खाज खुजलाने के पश्चात उसे समझ में आता है कि खाज कितनी पीड़ादायक है। वस्तुतः ये भोग, भोगते समय मधुर लगते हैं पर परिपाक काल में बहुत पीड़ादायी होते हैं। वासना उस किंपाक विषफल के समान है जो खाने में मधुर, देखने में सुन्दर और सूँघने में सुरभित होता है, किन्तु जिसका परिणाम है-मृत्यु।

काम-भोग से एक क्षण का सुख, बहुत काल का दुःख, सीमित सुख और असीमित दुःख मिलता है। ये संसार से मुक्ति के विपक्ष भूत हैं और सारे अनर्थों की मूल हैं।

यदि तुम्हें भोग ही करना है तो अपनी चेतना का भोग करो। चेतना का भोग ही वास्तविक ब्रह्मचर्य है। आत्मा में डूबना ही यथार्थ ब्रह्मचर्य है।

आत्मानुराग ही वास्तविक प्रेम है। आचार्यश्री ने मूकमाटी में लिखा है :-

प्रीत मैं उसे मानता हूँ
जो अंगातीत होता है
गीत मैं उसे मानता हूँ
जो संगतीत होता है

देहानुराग और आत्मानुराग में बहुत अन्तर है। इन दोनों में उतना ही अन्तर है जितना कि वासना और वात्सल्य में।

आर. के. हाऊस,
मदनगंज-किशनगढ़

कृत, व्रत, नियम का पालन करने वाले विवेकीजन स्वकर्त्तव्य से कदापि स्खलित नहीं होते।

मानव धर्म

यदि आप शाकाहारी हैं तो अवश्य ध्यान रखें

पदम रांटा

1. **चांदी का वर्क** : मिठाई, पान, सुपारी तथा देव प्रतिमा की सजावट में उपयोग न करें। चांदी के कण को बैल की आंत के चमड़े की परतों के बीच रखकर पीट-पीटकर बनाया जाता है।

2. **पान मसाला-गुटका** : मादकता उत्पन्न करने के लिए छिपकली की पूंछ डाली जाती है। पाउच, गुटका, पानमसाला, तम्बाकू के इस्तेमाल की लत पड़ जाने से मुंह एवं फेफड़ों में कैंसर हो सकता है।

3. **रेडिमेड आटा** : कुछ मशहूर ब्राण्ड के रेडिमेड आटे में मछलियों का चूर्ण या मतस्य चूर्ण (हड्डियों का पाउडर) मिलाया जाता है।

4. **साबूदाना** : टोफियोका नामक कंद को उबालकर उसके घोल को महीनों तक सड़ाया जाता है। असंख्य जीव, कीटाणु बिलबिलाते हुए मर जाते हैं। इस सड़े हुए घोल से ही साबूदाना का उत्पादन किया जाता है।

5. **बोन चायना क्रोकरी**: चीनी के बर्तन आदि बनाने में हड्डी के चूरे का प्रयोग होता है।

6. **आईस्क्रीम** : कम्पनी वाली मंहगी आइस्क्रीम में लगभग 6 प्रतिशत चर्बी लिसलिसे स्वाद के लिए मिलाई जाती है।

7. **सिन्थेटिक कथे** : अरारोट, लालरंग, मुलतानी मिट्टी, जूते की पॉलिश एवं पशुओं के शुष्क खून का प्रयोग किया जाता है।

8. **कोशा की साड़ी का कुर्ता** : रेशम के हजारों कीड़ों को उबालकर रेशमी कपड़ा बनता है। 100 ग्राम रेशम का वस्त्र तैयार करने में लगभग 15,000 कीड़े को मारना पड़ता है।

9. **चॉकलेट, केक इत्यादि** : कुछ चॉकलेट और टॉफियों में गौ मांस मिलाया जाता है। अनेक ब्रांड के ब्रेड, केक, बिस्कुट, केण्डी, पीपरमेन्ट, चॉकलेट बनाने में अण्डा और जिलेटिन का प्रयोग किया जाता है।

10. **जुएं मारने वाले तरल पदार्थ के उपयोग से मस्तिष्क कैंसर होता है।**

11. **शैम्पू** : कुछ किस्म के शैम्पूओं में अण्डे मिलाये जाते हैं। शैम्पू इस्तेमाल से आखों को कोई नुकसान न पहुंचे इसलिए परिक्षण किया जाता है। खरगोश को बांधकर

उसकी पलकों को टांक दिया जाता है और उनकी आखों में शैम्पू डालकर प्रयोग किया जाता है। खरगोश अंधे होकर मर जाते हैं।

12. **सेन्ट** : सेन्ट उत्पादन के लिए हजारों बिज्जु (बिल्ली जैसा जानवर) मार डाले जाते हैं। बिज्जु को बैतों से सूंता जाता है तथा चाकू से गोदा जाता है।

13. **ऑक्सीटोसिन इन्जेक्शन** : शीघ्र दूध निकालने के लिए प्रयुक्त आक्सीटोसिन इन्जेक्शन पशुओं को लगातार प्राप्त दूध स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, घातक है। इससे गाय भैंस को प्रसव जैसी पीड़ा होती है तथा कई बार दूध में खून भी उतर आता है।

14. **इन्सुलिन** : मधुमेह रोगियों को दिया जाने वाला इन्सुलिन गाय, बछड़ा, बैल, भेड़ और सुअर के पेन्क्रियाज में से प्राप्त किया जाता है। इस कारण बहुत से पशुओं को मौत के घाट उतारा जाता है।

15. **सिन्थेटिक दूध** : यूरिया रिफाइन्ड तेल, डिटर्जेंट, शक्कर, नमक, सतरीठा, अरारोट पाउडर, बबूल का गोंद मिलाया जाता है। सिन्थेटिक दूध स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

16. **चीज पनीर** : इसे बनाने के लिए रेनेज का इस्तेमाल होता है। दो सप्ताह से कम आयु वाले बछड़ों के पेट से रेनेज निकाला जाता है। जिससे हजारों बछड़ों को जिन्दा मार दिया जाता है।

17. **मुलायम चमड़ा** : इससे मंहगे जूते, चप्पल, पर्स, बेल्ट, मिनी बेग, हेण्डबेग इत्यादि वस्तुएं बनाई जाती हैं। इसे प्राप्त करने के लिए जिन्दा पशुओं पर गरम उबलते पानी की तेज धार डालते हैं।

18. **नहाने का साबुन** : दैनिक उपयोग के कई ब्राण्ड के नहाने के साबुन में चर्बी मिलाई जाती है।

19. **दूध पावडर** : कई दूध पाउडर में हड्डी व अन्य अशुद्ध पदार्थ मिलाये जाते हैं।

20. **दूध पेस्ट** : कई दूधपेस्टों में चर्बी मिलाई जाती है प्रत्येक दूधपेस्ट में सर्गिटोल, सोडियम लारिल सल्फेट, क्लोराइड मिला रहता है। सर्बिटोल से बच्चों को दस्त लग सकते हैं। क्लोराइड सरासर घातक विष है।

21. **जिलेटिन** : केप्सूल जिलेटिन नामक पदार्थ से

बनती है। जिलेटिन हड्डियों, खुरों, पशुओं के ऊतकों को उबालकर प्राप्त होता है। इसे पशुओं आदि की झिल्लियों आदि से भी प्राप्त किया जाता है।

22. **शहद** : इसे प्राप्त करने के लिए हजारों मधुमक्खियों को निचोड़ दिया जाता है। मधु में मिलाकर देशी दवा लेने का विकल्प चासनी उपलब्ध है।

23. **हाथी दांत** : हाथीदांत से कीमती आभूषण एवं खिलौनों के लिए जहर देकर हाथियों को मार दिया जाता है।

24. **ब्रश** : कई किस्म के रंगाई के ब्रश, शेविंग ब्रश, हेयर ब्रश, कलाकारी ब्रश बनाने के लिए सुअर की भौहें, पलकें और शरीर के बालों को नोंच लिया जाता है।

25. **कस्तूरी** : इत्र, फुलेल आदि सुगंधित पदार्थ बनाने के लिए कस्तूरी प्राप्त करने के लिए कस्तूरी मृग मार दिये जाते हैं।

26. **फर की टोपी या वेशभूषा** : कराकुल शिशु की खाल टोपियां या अन्य वेशभूषा बनाने के लिए काम आती है। कराकुल भेड़ को बेंतों से सूता जाता है ताकि उसे गर्भपात हो जाये और कसाइयों को वक्त से पहले कराकुल भ्रूण मिल जाये। इसकी खाल बहुत मंहगे दामों में बेची जाती है।

27. **लिपिस्टिक** : मधुमक्खियों को छत्तों से भगा दिया जाता है और हजारों की संख्या में उन्हें मार दिया जाता है। इनके छत्तों से मोम प्राप्त होता है। जिसे लिपिस्टिक के उत्पादन में उपयोग लिया जाता है। लिपिस्टिक में चमक लाने के लिए सुअर की चर्बी मिलाई जाती है।

28. **नेल पॉलिश** : इसमें जानवरों का खून मिलाया जाता है।

29. भालू के 2 से 4 दिन के शिशु को मारकर उसकी खाल की टोपियां बनाई जाती हैं। असंख्य खरगोशों को मारकर फर के थैले बनाये जाते हैं।

30. गर्भ निरोधक गोलियां खाने से, भ्रूण हत्या करने से केन्सर हो सकता है।

31. सरकार द्वारा आजकल शाकाहारी वस्तुओं पर हरा निशान व मांसाहारी वस्तुओं पर भूरा निशान लगाया जाता है। अतः प्रयोग करने के पूर्व अवश्य जांच लें।

32. **ठण्डा मतलब जानलेवा** : बोतल बन्द पानी में कीटनाशकों की मौजूदगी के बाद अब यह खुलासा हुआ है कि गर्मी से राहत दिलाने वाले सभी शीतल पेय बंद बोतलें जानलेवा हैं- कई बोतलों में तो अन्तर्राष्ट्रीय मानकों की तुलना में कीटनाशकों की मात्रा 70 गुना तक अधिक पाई गई है। जैसे - मिरिन्डा लेमन में 70 गुना, कोकाकोला में 75 गुना, फैंटा में 43 गुना, पेप्सी में 37 गुना, सेवन अप में 33 गुना, लिम्का में 30 गुना, बटर पेप्सी में 25 गुना, थम्सअप में 22 गुना, डाइट पेप्सी में 14 गुना, स्पाइट में 11 गुना अधिक कीटनाशक पाये गये। सबसे ज्यादा चौंकाने वाली बात यह कि कोकाकोला व पेप्सी में सिर्फ भारत में बेची जाने वाली कोल्ड ड्रिंक्स में ही ये कीटनाशक पाये गये जबकि अमेरिका में उपलब्ध पेय पदार्थों में कीटनाशक की मात्रा एकदम शून्य थी। अतः अब हमें विदेशी कम्पनियों द्वारा निर्मित पेय पदार्थों का पूर्णतः बहिष्कार करना चाहिए और स्वनिर्मित दही, लस्सी, छाछ, जूस आदि का प्रयोग करना चाहिए।

रांटा का परांठा

बस स्टैण्ड, केकड़ी (राज.)

घी के बाजार में कृत्रिम घी उत्पादन की बहुलता

सिंथेटिक दूध और पनीर के बाद अब सिंथेटिक घी बाजार में मिल रहा है। 80 प्रतिशत बाजार में सिंथेटिक घी ने कब्जा कर रखा है।

इसमें जानवरों की चर्बी, रिफाईंड तेल आदि का मिश्रण, शुद्ध घी की सुवास के लिए जर्मन से आयात कृत्रिम ऐसेन्स डाला जाता है। घी में कुछ प्रतिशत रसायन कीटनाशक का समावेश है, ये सब स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाते हैं।

श्रीमती प्रतिभा देशभाने
उस्मानाबाद

वायु है वरदान

डा. वन्दना जैन

**पवन पानी पृथ्वी, प्रकाश और आकाश
पंच तत्व के खेल से, बना जगत का पाश।**

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार हमारा शरीर वायु, जल, तेल या अग्नि, पृथ्वी और आकाश रूप पंच तत्व से निर्मित है तथा वे ही नैसर्गिक उपचारों के साधन हैं जिनमें वायुचिकित्सा, जल-चिकित्सा, मिट्टी-चिकित्सा, सूर्यकिरण चिकित्सा तथा आकाश तत्व के प्रयोग शामिल होते हैं।

आइए जानते हैं वायु के बारे में- जल को जीवन माना गया है, परन्तु वायु को प्राण कहा गया है। एक मिनट भी यदि हमें वायु न मिले तो हम घबरा उठते हैं, ज्यादा देर तक न मिले तो हमारा प्राणान्त तक हो सकता है। यह प्राणी मात्र का अत्यन्त आवश्यक भोज्य तत्व है। हम लोग दुनिया के सबसे धनवान तथा भाग्यशाली जीव हैं क्योंकि हमारे चारों तरफ से उत्तम शुद्ध वायु हमें आवृत्त किए हुए है। प्रतिदिन हम जितना भोजन करते हैं और जल पीते हैं, उससे सात गुना वायु भक्षण करते हैं। एक आदमी एक मिनट में 16 से 18 बार तक श्वास लेता है। आक्सीजन से प्रकाश और ताप दोनों प्राप्त होते हैं। स्वास्थ्य प्राप्ति एवं रोग निवारण की दृष्टि से वायु स्नान एक बेजोड़ नैसर्गिक माध्यम है।

वायु स्नान - जिस प्रकार घर को स्वच्छ रखने के लिए घर की खिड़कियाँ और झरोखे खोलकर अंदर जाती हवा का प्रवेश आवश्यक है, उसी प्रकार इस शरीर रूपी घर में त्वचा छिद्र (रोमकूप) रूपी झरोखे से होकर ताजी वायु का प्रवेश नित्य होते रहना परमावश्यक है। कपड़ों से सदैव शरीर को लपेटे रहने से त्वचा पीली पड़ जाती है और रोमकूप अकर्मण्य होकर शिथिल पड़ जाते हैं, और बहुत से तो एकदम बंद ही हो जाते हैं। फलस्वरूप कब्जियत, हृदयरोग तथा डायबिटिज आदि भयानक रोग सामने आते हैं। वायुस्नान से हम समस्त संसार के आनंद को मानो पी जाते हैं।

हमारे जैन साधु सारे जीवन भर इसी आनंद का रसपान करते हैं। वायुस्नान शरीर की स्वास्थ्य रक्षक एवं रोग प्रतिरोधक जीवनी शक्ति को बलशाली बनाता है। शरीर का कठोरीकरण करके हर वातावरण के अनुकूल ढाल देता है। प्रकृति हर प्राणी को निर्वस्त्र पैदा करती है और सभी निर्वस्त्र ही यहाँ से विदा हो जाते हैं। लेकिन मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसे जन्म लेते ही कपड़ों से ढक दिया जाता है ढकने का अर्थ है, प्रकृति की गोद से अलग करना। जितना हम बच्चों के शरीर

को वस्त्रों से लादते हैं उतनी ही उनकी रोग प्रतिरोधक जीवनीशक्ति कमजोर होती जाती है। हर बच्चा हमेशा रुग्ण रहने लगता है। संश्लेषित कपड़े से ही ढकना है तो उन्हें सूती तथा पतले सख्खिद्र कपड़े से ढकें ताकि त्वचा से हवा का सम्पर्क बना रहे।

बच्चे कपड़े को कभी पसन्द नहीं करते हैं वे बार-बार उसे फेंक देते हैं, वे प्रकृति के ज्यादा समीप हैं। ठण्ड के दिनों में भी आप उन्हें ढकने तथा ओढ़ने का प्रयास करते हैं। लेकिन वे बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं। आप इस नैसर्गिक प्रवृत्ति एवं उनके शरीर की माँग को नहीं समझ पाने के कारण प्रेमवश बच्चों के साथ ज्यादाती कर बैठते हैं।

दक्षिणी कंबोडिया के सने फानास नामक एक किशोर ने अभी तक कपड़े ही नहीं पहने हैं, उसके पिता ने उसे कई बार बुरी तरह पीटा फिर भी उसने कपड़े नहीं पहने। कपड़े से जो अंग ज्यादा देर तक ढका रहता है, वह अंग उतना ही नाजुक हो जाता है, गुप्तांग बराबर ढके रहने के कारण ही सबसे नाजुक अंग है। सिर, हाथ व चेहरा कम ढका रहता है इसलिए ये अंग प्रत्येक वातावरण का सहजता से मुकाबला कर लेते हैं। हम जितना ठंड से भयभीत रहते हैं भय के कारण ही ठंड की ज्यादा अनुभूति होती है। ठंड के दिनों में भी कुछ मिनट निर्वस्त्र रहने का अभ्यास डालें। महात्मा गांधी जी तथा जर्मनी के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक 'एडोल्फ जुस्ट' इसका अभ्यास किया करते थे।

चारों तरफ से हवा हमें घेरे हुए है, हवा का बाहरी तथा आंतरिक प्रयोग दोनों ही शरीर के अंदर रक्त को हीमोग्लोबिन द्वारा सोख लिया जाता है। ऑक्सी हीमोग्लोबिन के रूप में हवा रक्त प्रवाह के साथ समस्त अंगों को नवजीवन, नई ऊर्जा प्रदान करती है। शहरी तथा औद्योगिक क्षेत्र की हवा प्रदूषित होती है। उसमें Co, Co2, So2, NH3 सायनाइड आदि अनेक विषैली गैसें होती हैं, जो श्वास के सहारे जाकर हृदय फेफड़े, गुर्दे, यकृत, रक्त, अस्थि-मज्जा को प्रदूषित कर क्षतिग्रस्त करती हैं। भोपाल का गैस काण्ड इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। जिसमें हजारों लोग वे मौत मारे गए।

हवा, मौसम तथा पर्यावरण के अनुसार निरंतर बदलती रहती है, प्रत्येक मौसम में शीतल वायुमण्डल में घूमने से रक्त का संचार तीव्र होकर रक्त ऑक्सीकरण या शुद्धिकरण क्रिया बढ़ जाती है। गर्म वायुमण्डल में हवा की कमी के कारण

शरीर की गर्मी निकलनी मुश्किल हो जाती है, लेकिन हवा तेज होने से गर्मी खूब निकलती है प्रातःकालीन ठण्ड या गर्मी के मौसम में 15 से 45 मिनट तक ठण्डा वायुस्नान ताजगी एवं स्वास्थ्य प्रदान करता है। डॉ. नागेन्द्र कुमार जी नीरज इस्पाती ठंड में भी इसका प्रयोग करते रहते हैं।

डॉ. नीरज जी 1996 में बस्सी, जयपुर के प्राकृतिक चिकित्सालय के प्रभारी थे उस समय हम 12 बहिनें उनसे प्राकृतिक चिकित्सा का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त कर रहे थे। जनवरी का समय था ठंड बहुत तेज पड़ रही थी इसलिए हम लोगों के कमरे पर आए और बोले आप लोग इस कमरे को कब्र की तरह क्यों पैक किए हुए हो। अपने जीवन में स्वच्छ हवा तथा सद्विचारों का प्रवेशद्वार कभी बंद नहीं करना चाहिए। खिड़कियाँ हमेशा खोलकर सोएं तथा सिर को ढककर तो कभी भी नहीं सोना चाहिए। इस तरह उस दिन उन्होंने जीवन का एक महत्वपूर्ण सूत्र हमें दे दिया था।

वायुस्नान की विधियाँ- वायुस्नान का सर्वोत्तम समय सूर्योदय के दो घण्टे पूर्व तथा एक घण्टे बाद का है, जिसे ऋषियों ने ब्रह्ममुहूर्त कहा है। ब्रह्ममुहूर्त में उठने तथा वायुस्नान करने का स्वास्थ्य तथा ध्यान की दृष्टि से अपना महत्व है। इस समय मन, चित्त, वातावरण सभी कुछ शांत एवं प्रदूषण रहित होता है ब्रह्मबेला में ब्रह्मांड किरणें भी प्रभावित करती हैं। ब्रह्म अर्थात् स्वास्थ्य इसलिए यह ध्यानियों तथा स्वास्थ्यार्थियों की बेला है। इस महाबेला में प्रायः लोग बेहोश होकर निद्रा, आलस्य तथा प्रमाद में पड़े रहते हैं। जिन्हें स्वास्थ्य तथा धर्म की आकांक्षा है, वे इस समय उठकर वायुस्नान लें।

1. वायुस्नान का अभ्यास गर्मी के प्रातःकालीन स्वास्थ्यदायी मौसम से प्रारम्भ करें फिर जाड़े के दिनों में जारी रखते हुए निरंतर करें।

2. वृद्ध तथा अशक्त स्वास्थ्य साधक पहले अपने कपड़ों को कम करें सछिद्र पतले सूती कपड़े पहनें, जिससे त्वचा का स्पर्श हवा से हो सके।

3. ठंड के दिनों में शरीर जैसे-जैसे बर्दाश्त करने में सक्षम हो जाए अपने कमरे में 5-10 मिनट निर्वस्त्र होकर टहलें खिड़कियाँ, रोशनदान सभी खुले रखें।

4. कमरे में 30 मिनट यह प्रयोग निर्विघ्न सफल हो जाए तो फिर कमरे के बाहर छत मैदान या खुली जगह 5 से 15 मिनट तक निर्वस्त्र रहने की आदत डालें।

5. जब खुली जगह आधे घंटे तक निर्वस्त्र रहने की आदत हो जाए, फिर इसी प्रयोग को झील, नदी, तालाब या समुद्र के किनारें करें। सर्वोत्तम जगह पानी का किनारा ही है क्योंकि वहाँ ऑक्सीजन अधिक होने से वायुमण्डल तथा

वातावरण शुद्ध होता है वायुमण्डल की घुलनशील विषाक्त गैसों जल से घुल जाती हैं यदि ऐसा संभव न हो तो जंगल, मैदान तथा घर की छत सुविधानुसार काम में ली जा सकती है।

6. खुले में वायुस्नान का प्रयोग 5 मिनट से धीरे-धीरे बढ़ाते हुए एक-दो माह पश्चात 30-45 मिनट करें। प्रथम दिन ही अधिक समय वायुस्नान लेने से उपद्रव हो सकते हैं। हठधर्मिता न करें।

7. वायुस्नान लेते समय वायु का तापमान, शारीरिक स्थिति, वायु की गति वायु की आद्रता आदि विभिन्न परिस्थितियों का ध्यान रखें। हठधर्मिता न करें। जब तक वायुस्नान प्रीतिकर लगे तब तक करें। कंपकंपी न आने पावे। कंपकंपी की स्थिति में शरीर को गर्म करने के लिए व्यायाम, आसान, हाथों या सूखे तौलिये से सूखा घर्षण करें। तेजी से टहलें या दौड़े। गर्म कपड़ों से शरीर को ढंके।

8. अभ्यंतर वायुस्नान की दृष्टि से प्रत्येक मौसम में खिड़की रोशनदान खोलकर अथवा बाहर खुले विस्तृत आकाश के नीचे सोना सर्वोत्तम है सिर्फ ठंड के दिनों में बरामदे या खुले कमरे में सोएं।

9. हम सब सिर्फ फेफड़ों द्वारा ही श्वास नहीं लेते हैं। बल्कि शरीर का प्रत्येक रोमकूप भी श्वास लेता है। प्रयोग द्वारा देखा गया है कि शरीर के रोमकूपों को मोम द्वारा बंद कर देने पर प्राणी की मृत्यु हो जाती है। इसलिए शरीर पर कपड़े भी सूती तथा सछिद्र हों। पाकिस्तान के एक हृदय रोग विशेषज्ञ ने खोज की है कि टैरेलिन तथा अन्य संलेपित तन्तु से बने कपड़े पहनने से हृदय रोग, उच्चरक्तचाप, त्वचा रोग तथा अन्य घातक रोग होते हैं।

10. वायुस्नान के साथ सूर्यस्नान भी लिया जा सकता है। प्रातःकालीन सूर्य की किरणों में अल्ट्रावायलेट किरणें होती हैं। जो त्वचा के सम्पर्क में विटामिन डी, कैल्शियम तथा फास्फोरस अवशोषित होकर शरीर के लिए उपयोगी बनते हैं। धूपस्नान तथा वायुस्नान दोनों मिलकर चपापचय (विष निष्कासन, स्वस्थ कोषिकाओं का सृजन, आहार का सात्मीकरण आदि) क्रिया को उत्तेजित तथा उन्नत करते हैं। धूपस्नान व वायुस्नान के समय यदि रोयेंदार सूखे तौलिए या हथेलियों व अंगुलियों से घर्षण 30-40 मिनट क्रिया जाए तो स्वास्थ्य के लिए सोने में सोहागा बाली कहावत चरितार्थ होती है। धूपस्नान के समय इन क्रियाओं से शरीर की स्नायुशक्ति का संचार व्यवस्थित होता है। सभी प्रकार के रोगियों के लिए ये क्रियाएं पुनर्जीवन एवं स्वास्थ्यदायक हैं।

काई पैलेस, वर्णी कालोनी, सागर (म.प्र.)

जिज्ञासा- समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता- श्री सुमेरचन्द्र भगत, आगरा

जिज्ञासा- क्या सूक्ष्मनिगोदिया जीवों का भी अकालमरण होता है? यदि होता है तो क्यों?

समाधान- तत्त्वार्थसूत्र अध्याय-2, सूत्र-53 में इसप्रकार लिखा है- 'औपपादिक-चरमोत्तम देहा संख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः' ॥ 53 ॥ अर्थ- उपपाद जन्म है वाले और असंख्यात वर्ष की आयु वाले अर्थात् भोगभूमिया जीव अनपवर्त्य आयु वाले होते हैं। अनपवर्त्य आयु का तात्पर्य है कि उपघात के निमित्त विष, शस्त्रादि बाह्य निमित्तों के मिलने पर जो आयु नहीं घटती है वह अनपवर्त्य आयु कहलाती है। अर्थात् तीनों प्रकार के जीवों का अकालमरण नहीं होता है। इस सूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में इस प्रकार कहा है। 'न ह्येषामौपपादिकादीनां बाह्यनिमित्त वशादायुरपवर्त्यते इत्ययं नियमः। इतरेषामनियमः'। अर्थ- इन औपपादिक आदि जीवों की आयु बाह्य निमित्त से नहीं घटती यह नियम है, तथा इनसे अतिरिक्त शेष जीवों का ऐसा कोई नियम नहीं है।

उपरोक्त सूत्र की टीका से यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि सूक्ष्म निगोदिया जीवों का भी अकालमरण संभव है। पं. रतनचन्द्र मुख्तार व्यक्तित्व एवं कृतित्व ग्रंथ में पृष्ठ 558 पर मुख्तार साहब ने लिखा है कि 'भय तथा संक्लेश आदि के कारण सूक्ष्म जीवों का भी अकालमरण संभव है।'

प्रश्नकर्ता- सौ. ज्योति लुहाड़े, कोपरगाँव

2. जिज्ञासा- हर गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है तो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव, जो देवों में 33 सागर आयु भोगता है, उसके साथ कैसे घटेगा?

समाधान- आपने किस ग्रंथ में इसप्रकार पढ़ा है कि हर गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है? यह ठीक नहीं है, सच तो यह है कि पहले, चौथे, पाँचवें तथा तेरहवें गुणस्थान को छोड़कर शेष गुणस्थानों का उत्कृष्ट एवं जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है। इन चार गुणस्थानों का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है पर उत्कृष्ट से निम्न प्रकार है-

1. प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान- अभव्य अथवा अभव्य सम भव्य दूरानुदूरभव्य की अपेक्षा अनन्तानन्त काल है।

2. चतुर्थ अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान- अन्तर्मुहूर्त कम एक करोड़ पूर्व 33 सागर।

3. पंचम देशविरत गुणस्थान- कुछ कम एक करोड़पूर्व।

4. तेरहवां सयोगकेवली गुणस्थान- आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्तकम एक करोड़पूर्व।

अधिक जानकारी के लिए सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ 40 देखने का कष्ट करें।

प्रश्नकर्ता- पं. देवेन्द्र शास्त्री, जबलपुर।

जिज्ञासा- क्या औपशमिक आदि पांच भाव जीव के अलावा अन्य द्रव्यों में भी पाये जाते हैं?

समाधान- इस संबंध में श्री धवला पुस्तक-5 के निम्न प्रसंग ध्यान देने योग्य हैं- 'केण भावो। कम्माणमुदएण खयणखओवसमेणकम्माणमुवसमेण सभावदो वा। तत्थ जीवदव्वस्स भावा उत्तपंचकारणहितो होति। पोग्गलदव्वभावा पुण कम्मोदएण विस्सासादो वा उप्पज्जति। सेसाणं चटुण्हं दव्वाणं भावा सहावदो उप्पज्जति। (धवला पृ. 5 पू. 181)

प्रश्न- भाव किससे होता है, अर्थात् भाव का साधन क्या है।

उत्तर- भाव, कर्म के, उदय से, क्षय से, क्षयोपशम से, कर्मों के उपशम से अथवा स्वभाव से होता है। उनमें से जीव द्रव्य के भाव उक्त पाँचों ही कारणों से होते हैं किन्तु पुद्गल द्रव्य के भाव, कर्मों के उदय से अथवा स्वभाव से उत्पन्न होते हैं। शेष चार द्रव्यों के भाव स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं।

2. जीवेषु पंचभावाणमुवलंभा । ण च सेसदव्वेषु पंचभावा अत्थि, पोग्गलदव्वेषु ओदइयपारिणाभियाणं दोण्हं चैव भावणमुवलंभा, धम्माधम्मकालागासदव्वेषु एकस्स पारिणामियभावस्सेवुवलंभा (धवला पु. 5, पृ. 186)

अर्थ- जीवों में पाँचों भाव पाये जाते हैं, किन्तु शेष द्रव्यों में तो पाँच भाव नहीं हैं, क्योंकि, पुद्गल द्रव्यों में औदयिक और पारिणामिक इन दोनों ही भावों की उपलब्धि होती है, और धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल द्रव्यों में केवल एक पारिणामिक भाव ही पाया जाता है।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि पुद्गल में भाव कर्म के उदय से जो फलदान शक्ति आ जाती है वह उसका औदयिक भाव है तथा पाँचों अजीव द्रव्यों में जो अस्तित्व, वस्तुत्व आदि गुण पाये जाते हैं वे पारिणामिक भाव हैं।

पारिणामिक भाव के संबंध में सर्वार्थसिद्धि पैरा 269 में तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय-2 के 8वें सूत्र की टीका में इस प्रकार कहा है- "शंका-अस्तित्व, नित्यत्व और प्रदेशत्व आदि भी भाव हैं उनका इस सूत्र में ग्रहण करना चाहिए?"

समाधान- अलग से उनके ग्रहण करने का कोई काम नहीं, क्योंकि उनका ग्रहण किया ही है। शंका-कैसे? समाधान-

क्योंकि सूत्र में आए हुए च. शब्द से उनका समुच्चय हो जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि तत्त्वार्थसूत्र अध्याय -2, सूत्र 7 'जीवभव्याभव्यत्वानि च' इसमें जो च शब्द दिया है उससे अस्तित्व, वस्तुत्व आदि पारिणामिक भाव हैं, उनको ग्रहण कर लेना चाहिए। इन अस्तित्व आदि गुणों के पारिणामिक भाव होते हुए भी सूत्र में गिनती में न लेने का कारण यह है कि यह जीव में पाये जाने वाले असाधारण भाव नहीं हैं बल्कि साधारण भाव हैं, क्योंकि अजीव में भी पाये जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि जीव में पांचों भाव, पुद्गल में औदयिक व पारिणामिक ये दो भाव तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल में केवल पारिणामिक भाव पाया जाता है।

जिज्ञासा- जब बारहवें स्वर्ग से ऊपर के देव नीचे नहीं जाते, तो सीता के जीव ने नरक में जाकर लक्ष्मण आदि को उपदेश कैसे दिया?

समाधान - यह सत्य है कि 12वें स्वर्ग से ऊपर के देव मध्य लोक तक तो आते हैं, पर अधोलोक में नहीं जाते। तत्त्वार्थसूत्र अध्याय-1, सूत्र-8 की टीका में पैरा-85 के तत्त्वार्थ- वृत्ति विशेषताओं में आचार्य प्रभाचन्द्र लिखते हैं कि "शंका-विहार की अपेक्षा 8 राजू स्पर्श क्यों नहीं कहा?

समाधान - ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए क्योंकि शुल्क लेश्या वाले देवों का अधोलोक में विहार नहीं होता।

आगम में दो प्रकार से कथन पाया जाता है 1. साधारण 2. विशेष से। अतः इस कथन को हमें इस प्रकार ग्रहण करना चाहिए कि साधारणतया 12वें स्वर्ग से ऊपर के देवों का अधोलोक गमन नहीं पाया जाता परन्तु विशेष रूप से क्वचित् कदाचित् पाया भी जाता है। जैसे सर्वार्थसिद्धि में चतुर्थ गुणस्थान से ऊपर सप्तम गुणस्थान तक केवल तीन शुभ लेश्या ही कही गई हैं। परन्तु तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 9, सूत्र 47 की टीका करते हुए पुनः वकुश और प्रतिसेवना कुशील भावलिंगी साधुओं के छहों लेश्या कही गई हैं। इस विषय को भी हमें साधारण तथा विशेष कथन मानकर स्वीकार करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता - श्री कामताप्रसाद, मुजफ्फरनगर।

जिज्ञासा - राजा श्रेणिक की मृत्यु को अकाल मरण माना जाए या नहीं?

समाधान- राजा श्रेणिक ने मरण से पूर्व नरकायु का बंध कर लिया था। आगम के अनुसार परभव संबंधी आयु का बंध कर लेने वाले जीवों का अकालमरण नहीं होता है जैसा कि श्री धवला पुस्तक 10, पृष्ठ 237 पर कहा है- "परभवि आउए बद्धे पच्छा भुंजमाण्णउअस्स कदलीघादो णत्थि जहासरूवेण चेव वेदेदित्ति"

अर्थ - परभव संबंधी आयु के बंधने के पश्चात् भुज्यमान आयु का कदलीघात नहीं होता, किन्तु वह जितनी थी उतनी

का ही वेदन करता है।

अतः राजा श्रेणिक का अकालमरण नहीं हुआ।

जिज्ञासा - सभी मुक्त जीवों की गति मोड़े रहित सीधी होती है फिर क्या समुद्र एवं पर्वतों के ऊपर सिद्धालय में स्थान खाली होगा?

समाधान - आगम में संहरण सिद्धों का वर्णन पाया जाता है। (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ 374) जिन मुनिराजों को पूर्व बैर वश देव, ध्यान करते हुए आकाश में ले जाते हैं और ऊपर से किसी भी पर्वत या समुद्र के ऊपर छोड़ देते हैं और वे मुनिराज पहाड़ या समुद्र की ओर आते-आते बीच में ही अथवा वहां गिरकर मोक्ष प्राप्त करते हैं वे संहरण सिद्ध कहलाते हैं। ऐसे संहरण सिद्ध सभी समुद्र, पर्वत आदि से होते हैं और उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के सब समयों में होते हैं। (राजवार्तिक अध्याय-10, सूत्र-9 टीका) अतः 45 लाख योजन व्यास वाले समस्त मनुष्य लोक के ऊपर सिद्धालय में एक भी प्रदेश ऐसा नहीं है जहाँ सिद्ध भगवान विराजमान न हों। यहाँ यह भी जानना चाहिए कि तिलोयपण्णत्ति अधिकार-9, गाथा-15 के अनुसार - अर्थ - मनुष्य लोक प्रमाण स्थित तनु वात वलय के उपरिम भाग में सब सिद्धों के सिर सदृश होते हैं। अधस्तन भाग में कोई विसदृश होते हैं। अर्थात्-केवल ज्ञान प्राप्ति से पूर्व उन मुनिराज का शरीर किसी भी आसन में क्यों न हो, सिद्ध अवस्था में तो सभी मुक्त आत्माओं के सिर तनु वातवलय के अंतिम भाग को समान रूप से स्पर्श करते हुए होते हैं।

प्रश्नकर्ता - ब्र. रविन्द्र भैयाजी।

जिज्ञासा - क्या विदेह क्षेत्र के जिनालयों में क्षेत्रपाल आदि की मूर्तियां होती हैं?

समाधान - श्री सिद्धान्तसार दीपक अधिकार-8, श्लोक नं. 147-151 में इस प्रकार कहा गया है - "विदेहक्षेत्रस्थ देशों के सर्व नगरों एवं ग्रामों आदि में मणिमय और स्वर्णमय जिन चैत्यालयों की पंक्तियां हैं। वे जिनमन्दिर उन्नत और प्रकाशमान तोरणों से युक्त रत्नमय सहस्त्रों जिन बिम्बों से भरे हुए और रत्नमय उपकरणों से परिपूर्ण हैं, वहां कहीं भी कुदेवालय नहीं हैं। (147-148) वहां पर मुनियों और देवगणों से पूजित और वन्दित तथा प्रकाशमान दीप्ति से युक्त जिनेन्द्र भगवान की दिव्यमूर्तियां ही प्रचुर मात्रा में हैं, नीच देवों की मूर्तियां नहीं हैं। (149) वहां उत्पन्न होने वाले प्रवीण समस्त अभ्युदय सुख एवं अन्य समस्त सर्व अर्थ की सिद्धि के लिये नाना प्रकार की पूजनविधि से जिनेन्द्र भगवान को ही पूजते हैं (150) विवाह एवं जन्म आदि कार्यों में तथा अन्य मंगल कार्यों में एक परमेष्ठी अर्थात् अर्हन्त, सिद्ध आदि का ही पूजन होता है, क्षेत्रपाल आदि का नहीं। (151)

मध्यप्रदेश अल्पसंख्यक आयोग

ई-ब्लाक, पुराना सचिवालय, भोपाल

अरुण जैन

सदस्य

प्रति,

माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी

मुख्यमंत्री गुजरात राज्य

गांधी नगर, अहमदाबाद

म.प्र.रा.अ.आ./2004/977

दिनांक 29-04-04

विषय : मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग द्वारा गुजरात के जूनागढ़ पर विराजमान 22वें तीर्थकर नेमिनाथ भगवान की निर्वाण भूमि गिरनार जी की पाँचवी एवं चौथी टोक के मूलस्वरूप को परिवर्तित करने की कुचेष्टा एवं अवैध निर्माण को तत्काल हटाने हेतु ।

देश में गुजरात राज्य के जूनागढ़ की पर्वत श्रंखला पर विराजमान तीर्थकर भगवान नेमिनाथ का निर्वाण स्थल "गिरनार" दिगम्बर जैन समुदाय का एक परम पावन पवित्र धार्मिक स्थल है। पूरी पर्वत माला की विभिन्न टोंकों (शिखरों) का अपना-अपना महत्व है, जो उनकी धार्मिक भावनाओं एवं श्रद्धा का द्योतक है। जैन समुदाय इस पवित्र स्थल में विगत सहस्राब्दियों से अपने आराध्य 22वें तीर्थकर भगवान नेमिनाथ का पूजन अर्चन, पूजा पाठ एवं धार्मिक अनुष्ठान इत्यादि सम्पन्न करते आ रहे हैं, इतिहास के पन्ने इस बात की पुष्टि करते हैं।

स्वतंत्र भारत में कभी भी किसी ने किसी अन्य धर्म के प्रति या उनके पवित्र धार्मिक स्थलों के साथ छेड़खानी या दुर्भावना नहीं रखी है। सारा विश्व जानता है कि हमारा देश पूर्ण रूपेण एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है और हमारे इस गौरव को बनाए रखने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी देश के प्रत्येक नागरिक की तथा शासन प्रशासन की है, इस पवित्र स्थल में सेवा-अर्चना आदि दैनिक धार्मिक कार्यों का प्रबंध जैनसमुदाय के धर्मावलम्बी बंधु ही करते आ रहे हैं। यहाँ लाखों धर्मावलम्बी पात्र सेवा एवं दर्शनार्थ देश-विदेश के कोने-कोने से प्रतिवर्ष आते रहते हैं।

कुछ समय पूर्व से अवांछित तत्वों ने इस क्षेत्र की शांति भंग कर रखी है। वे इस जैन तीर्थ को अपने लिए सर्वदा सुरक्षित क्षेत्र मानकर तरह-तरह की भ्रांतियां फैलाकर, जन समुदाय को भ्रमित कर जैन धर्मावलम्बियों की इस प्राचीन धरोहर के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। यहाँ तक वे भगवान की जयकार भी नहीं लगाने देते, जिससे दुर्भावना पनप रही है और धर्मावलम्बी लोग एक दूसरे धर्म के प्रति दुर्व्यवहार पाल रहे हैं, शांति व्यवस्था भंग हो गई है, और चारों ओर भय का वातवरण निर्मित हो गया है। यही नहीं उनके हौसलों ने इस क्षेत्र को दत्तात्रेय टोंक की नवीन संज्ञा देकर उसे इस नाम से प्रचलित कर रहे हैं, जो सर्वथा मिथ्या है, गलत है उक्त कथित पर्वत माला प्राचीन काल से ही जैन समुदाय का उपासना स्थल रहा है वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगा। इस प्राचीन सम्पदा और पुरातत्व की अपनी अहमियत है पावन एवं वन्दनीय है। शासन पर इन्हें सुरक्षित रखने का दायित्व है। इन स्थलों का संरक्षण करना पुरातत्व विभाग की पूर्ण जिम्मेदारी है। दुर्भावनापूर्वक वैदिक धर्मावलम्बियों द्वारा वेद विहित पद्धति से पूजा पाठ करना एवं जैन समुदाय के तीर्थ यात्रियों से अभद्रता एवं दुर्व्यवहार किया जाता है, इसके पीछे निश्चय ही अन्य समाज के उन कदावर व्यक्तियों का हाथ है जो इस प्रकार के तत्वों को संरक्षण देकर राज्य के राजनैतिक क्षेत्र में अपनी विशेष पहचान बनाए रखना चाहते हैं।

अगस्त 2004 जिन भाषित 27

वैदिक रीति से पूजा पाठ आदि कराने का ठेका तथाकथित कुछ पंडों के हाथों में है, ठीक वैसे ही जैसे प्रयाग या काशी तीर्थ यात्रा हेतु आए यात्रियों को उनके दलाल अपने साथ में ले जाकर यात्रा कराते हैं असामाजिक तत्वों ने इस तीर्थ क्षेत्र में अतिक्रमण कर आवास इत्यादि भी निर्मित कर लिए हैं जो पूर्णतः अवैध निर्माण है। शासन का ध्यान विगत कई वर्षों से जैन समुदाय द्वारा इस ओर लगातार आकर्षित भी किया गया है, किन्तु आज तक उचित कार्यवाही उपेक्षित है, गौरतलब है कि गुजरात राज्य का यह क्षेत्र शासन के पुरातत्व विभाग के अधीन है तथा इसके संरक्षण का पूर्ण दायित्व पुरातत्व विभाग का भी है।

पर्वत माला पर जैन धर्मावलम्बी यात्रियों को अपने धार्मिक स्थल पर धार्मिक क्रियाओं अनुष्ठान इत्यादि करने के लिए अवरोध उत्पन्न करना एक सामान्य बात हो गई है वे उनकी पूजा अर्चना में भी विघ्न उत्पन्न करते हैं साथ ही भगवान की जय-जयकार भी नहीं करने देते जो सर्वथा निन्दनीय है, खेदजनक है।

पूरे देश में सर्वविदित है कि गिरनार सिद्ध क्षेत्र जैन समुदाय के 22वें तीर्थकर नेमिनाथ भगवान की निर्वाण भूमि है और ये धर्मावलम्बी अपने आराध्य इष्ट की पूजा अर्चना एवं रखरखाव अपने धार्मिक एवं सामाजिक रीति रिवाजों के अनुसार अनादि काल से करते आ रहे हैं, ठीक उसी प्रकार जैसा की देश के अपने अन्य तीर्थक्षेत्रों का जैन समुदाय करता आ रहा है।

लगभग आठ दशक पूर्व पाँचवीं टोंक का जीर्णोद्धार इस क्षेत्र के सभ्रान्त निवासी “बंडी कारखाना वालों” दिग्म्बर जैन धर्मावलम्बी परिवार द्वारा कराया गया था। दुर्भाग्यवश करीब 20-22 वर्ष पूर्व यहीं टोंक (छतरी) बिजली गिर जाने के कारण पुनः छतिग्रस्त हुई। संयोग की बात है कि पुनः वही धर्मावलम्बी परिवार इसका जीर्णोद्धार करवा कर पुण्य लाभ लेना चाह रहा है। जैन धर्मायतन में छतरी बनाने बनवाने की अपनी एक रीति है जो पवित्र भावना एवं श्रद्धा का प्रतीक है। जिसे पूर्ण धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा सम्पन्न किया जाता है, जिनमें धर्मानुसार वर्जित निर्माण वस्तुओं का उपयोग भी नहीं किया जाता। इस धार्मिक भावना को ध्यान में रख वहाँ की प्रतिनिधि संस्था ने स्थानीय प्रशासन से इसके जीर्णोद्धार (पुनःनिर्माण) रखरखाव किए जाने हेतु उन्हें आज्ञा दी जाए इस हेतु निवेदन किया है किन्तु आज तक यह आज्ञा जैन समाज को नहीं मिली। वहाँ इन अवांछित अन्य लोगों ने कुछ माह पूर्व इसके चारों ओर अवैध निर्माण कार्य चालू कर दिया जिसकी सूचना भी स्थानीय प्रशासन को समाज द्वारा दी गई बाद में न्यायालय द्वारा उस पर रोक लगाने थाने में (एफआईआर) हेतु पुरातत्व विभाग से निवेदन भी किया किन्तु जैन तीर्थ प्रतिनिधि संस्था की इस पहल पर कोई भी कार्यवाही आज तक नहीं की गई, जो देश के मूलभूत संवैधानिक अधिकारों की खुली अवहेलना का प्रतीक है। इस तरह के गैर कानूनी कार्यों को शासन द्वारा अनदेखा करना, सार्वजनिक हित में अशांति फैलाने और अवांछित तत्वों को प्रोत्साहन देने में भागीदार बनने के समान है। जिसकी निन्दनीय भर्त्सना की जानी चाहिए एवं जिम्मेदार अधिकारियों पर इस गैर जिम्मेदाराना बर्ताव की न्यायोचित प्रतिक्रिया भी होनी चाहिए।

यदि 350 वर्ष का राम मंदिर या 800 वर्ष पूर्व ध्वस्त सोमनाथ मंदिर का पुनः निर्माण एक समुदाय की धार्मिक आस्था का प्रमाण है तो जैन समुदाय की आस्था और धार्मिक भावना भी तो उसी समान सम्मान की अधिकारी है। मंदिर स्थल आखिर मंदिर स्थल ही रहेगा। धर्मस्थलों को सुरक्षित रखने जिससे उस समुदाय के धर्मावलम्बियों की धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुँचे इसका संवैधानिक दायित्व भारतीय संविधान में शासन का है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिन्होंने देश के स्वतंत्रता समर में बलिदान दिए हैं, उन सभी को यथोचित सम्मान और समान संवैधानिक अधिकार प्राप्त हो, इस सामाजिक सार्वजनिक मूलभूत आवश्यकता को ध्यान में रख भारतीय संविधान के कर्णधारों ने देश के अल्पसंख्यक समुदायों के संवैधानिक अधिकारों को सुरक्षित रखने के प्रावधान एवं उनके संरक्षण को प्राथमिकता के अनुक्रम में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 से 30 में समाहित कर उन समुदायों को एक संवैधानिक कवच बिना कोई भेद भाव के रखा है, उन्हें अपनी भाषा संस्कृति की रक्षा सुरक्षा का भी पूर्ण अधिकार है।

भारतीय संविधान के उपासना स्थल विशेष उपबंध अधिनियम 1991 को अधिनियम संस्था पर 18-09-

1991 (42 ऑफ 18-09- 1991) के तहत किसी भी उपासना स्थल के धार्मिक स्वरूप को बनाए रखने से स्पष्ट निर्देश है। उपरोक्त इस अधिनियम का सीधा उल्लंघन है तथा अधिनियम की धारा 6 (3) के अधीन एक दंडनीय अपराध है।

हमारे संविधान में हमारी पुरातन धरोहर को भी सुरक्षित रखने का ताकि उसके स्वरूप को कोई हानि न हो इसका भी पूरा ध्यान रखा है। संविधान में पुरातत्व स्थलों के रखरखाव इत्यादि हेतु भी सन 1958 में एक अधिनियम बनाया है, जिसकी धारा (19) एवं धारा (20)के तहत किसी भी व्यक्ति, समुदाय को देश के पुरातन महत्त्व के स्थानों पर किसी भी तरह का बदलाव- खनन इत्यादि करना न केवल वर्जित है अपितु दंडनीय अपराध भी है।

वर्तमान परिस्थितियाँ इस बात का प्रमाण है कि स्थानीय- शासन गिरनार पर्वत स्थित जैन धर्मावलम्बियों के इस पुरातन धर्मस्थल पर इन संवैधानिक नियमों अधिनियमों की पात्रता की अवहेलना कर रही है। श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ संरक्षिणी महासभा के संलग्न छाया प्रतियों से यह बात स्पष्ट है कि प्रशासन वास्तविकता से अनभिज्ञ बन रहा है, जो विश्वसनीय प्रतीत नहीं होती।

क्या राष्ट्र की अखंडता एकता और धर्मनिरपेक्षता की बलि पर हम तब चेतेंगे जब बाबरी मस्जिद या गोधरा जैसी निंदनीय घटनाएं हो जाएगी, परिस्थितियाँ विस्फोटक हो, उससे पहले जनहित में, राष्ट्रहित में, शासन को यथोचित कदम उठाने होंगे तथा पूर्ण निष्कर्ष निकलने तक स्थितियाँ यथावत रखनी होगी।

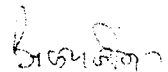
जैन धर्म में अनादिकाल से अकाट्य प्रमाणिक प्रमाण जो इसके अति प्राचीन होने की पुष्टि करते हैं। ऐसे में 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान की निर्वाण भूमि जूनागढ़ गिरनार पर्वत स्थित पाँचवी टोंक एवं चौथी टोंक के मूलभूत स्वरूप के परिवर्तन की अनाधिकृत चेष्टा, क्या अल्पसंख्यक जैन समुदाय के साथ अनुचित असंवैधानिक प्रतीत नहीं होती ?

अहिंसा परमोःधर्मः के अनुयायी शांति प्रिय जैन समुदाय को देश में गौरव और प्रतिष्ठा के साथ तथा अपने धार्मिक अस्तित्व एवं धर्मस्थलों को सम्मानपूर्वक एवं श्रद्धापूर्वक बनाए रखने का अधिकार प्राप्त है। गिरनार पर्वत पर होने वाले इस निंदनीय कार्य को एवं इसके मूलभूत स्वरूप को बदलने की कुचेष्टा पर अविलम्ब नियंत्रण एवं रोक लगा उसे यथावत स्थिति में रखे रहने का तत्वरित आदेश दिया जाए एवं जो छतरी गिर गई है उसे जैन धर्मावलम्बी प्रतिनिधि संस्था द्वारा धार्मिक रीति रिवाज से उसके जीर्णोद्धार के आदेश भी दिए जाए ताकि पुरातन महत्त्व की धरोहर सुरक्षित बनी रहे। उक्त कार्यवाही से भारतीय गणतंत्र की संवैधानिकता पर उठ रहे अविश्वास को विराम मिलेगा। जो राष्ट्र हित एवं देश की अखंडता के लिए सर्वोपरि है।

आयोग की अनुशंसा

मध्यप्रदेश राज्य अल्पसंख्यक आयोग जैन समुदाय की धार्मिक भावनाओं एवं आस्थाओं को दृष्टिगत रखते हुए गुजरात राज्य में जूनागढ़ पर्वत माला पर स्थित गिरनार पर्वत पर विराजमान जैन समुदाय के 22 वें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान की पांचवी एवं चौथी टोंक के मूलभूत स्वरूप के परिवर्तन करने की कुचेष्टा एवं अनाधिकृत निर्माण कार्यों को तत्काल हटाने की अनुशंसा करता है, तथा समयबद्ध निश्चित सीमा में उसका जीर्णोद्धार, मरम्मत आदि कराकर जैन समुदाय की प्रतिनिधि संस्था को उनकी प्राचीन धरोहर सुरक्षित करने हेतु यथोचित निर्णय दिए जाने की अनुशंसा करता है, ताकि धर्मावलम्बी बंधुओं की देखरेख में समुदाय अपने धार्मिक अनुष्ठान पूजा अर्चना कर, इस उपासना स्थल के मूलस्वरूप को नष्ट होने से बचा सके।

आपका



(अरुण जैन)

संलग्न :

यथोपरि पत्र की छायाप्रतियाँ।

सदस्य म.प्र. अल्पसंख्यक आयोग
800, गोल बाजार, जबलपुर - 482002

अगस्त 2004 जिन भाषित 29

समाचार

राष्ट्रीय जैन प्रतिभा सम्मान समारोह

छतरपुर। विख्यात जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य मुनि श्री क्षमासागर जी की प्रेरणा से शुरू हुआ राष्ट्रीय जैन प्रतिभा सम्मान समारोह इस वर्ष म. प्र. के अशोकनगर (गुना) में 23 व 24 अक्टूबर 04 को आयोजित होगा। पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी एवं मुनि श्री भव्य सागर जी के सान्निध्य तथा मैत्री समूह के तत्त्वावधान में आयोजित सम्भवतः देश के इस सबसे बड़े प्रतिभा सम्मान समारोह में शामिल होने हेतु पात्र प्रतिभाओं से एक सितम्बर 04 तक निर्धारित फार्म पर प्रविष्टियां आमंत्रित की गई हैं।

मैत्री समूह के श्री देवराज जैन एवं डॉ. सुमतिप्रकाश जैन के अनुसार इस वर्ष भी कक्षा 10 वीं में 85 प्रतिशत एवं 12 वीं में 75 प्रतिशत और उससे ज्यादा अंक पाने वाले एवं खेलों में राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राएं अपनी प्रविष्टियां निर्धारित आवेदन फार्म में भरकर एक सितम्बर 04 तक भेज दें। आवेदनपत्र श्री पी. एल. बैनाड़ा, 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, हरीपर्वत, आगरा के पते पर भेजे जा सकते हैं। इस संबंध में विस्तृत जानकारी एवं आवेदन फार्म श्री देवराज जैन, छतरपुर के फोन नं. 241741, डॉ. सुमतिप्रकाश जैन, महाराजा कालेज, छतरपुर, फोन नं. 241386 अथवा श्री पी. एल. बैनाड़ा आगरा के फोन नं. 9837025087 से प्राप्त किए जा सकते हैं। उल्लेखनीय है कि वैज्ञानिक प्रबंधकीय कौशल के लिए विख्यात इस प्रतिभा सम्मान समारोह का शुभारंभ वर्ष 2001 में शिवपुरी (म.प्र.) में हुआ था। वर्ष 2002 में यह आयोजन जयपुर एवं वर्ष 2003 में रामगंज मण्डी (कोटा) में ऐतिहासिक सफलता के साथ सम्पन्न हुआ था। इन तीनों समारोहों में छतरपुर जिले की अनेक प्रतिभाएं सम्मानित हो चुकी हैं।

उल्लेखनीय है कि इस भव्य समारोह में छतरपुर से श्री प्रदीप जैन, इजि. सुनील जैन व राजेश वडकुल मैत्री समूह से अपनी सक्रिय भूमिका निभाते आ रहे हैं।

प्रेषक - डॉ. सुमतिप्रकाश जैन, बेनीगंज, छतरपुर (म.प्र.)

संस्थान-समाचार

आपको सूचित करते हुए बड़ा हर्ष हो रहा है कि सांगानेर की पावन-पुनीत धरा पर परम पूज्य आ. विद्यासागर जी महाराज के मंगल आशीर्वाद एवं मुनिपुंगव 108 श्री सुधासागर जी महाराज की पावन प्रेरणा से 1996 में संस्थापित श्री दिग. जैन श्रमण संस्कृति संस्थान सांगानेर के सत्र 2003-2004 में विविध कक्षाओं की परीक्षा में सम्मिलित सभी 130 छात्रों ने उत्तमश्रेणी से परीक्षा-परिणाम शत-प्रतिशत रहा है। क्रमशः कनिष्ठोपाध्याय (11) में अंकित जैन सवाई माधोपुर, वरिष्ठोपाध्याय (12) में, सुनील अग्रवाल टोडारायसिंह, शास्त्री प्रथम वर्ष (बीए) में आशीष जैन पथरिया, शास्त्री-द्वितीय वर्ष में सोनल जैन दिगौड़ा, शास्त्री अंतिम वर्ष में पुलक गोयल कटनी एवं आचार्य प्रथम -वर्ष (एमए) में मनोज जैन भगवां ने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

ग्रीष्मकालीन अवकाश में संस्थान के छात्रों द्वारा विविध स्थानों पर शिविर आयोजित कर धर्म-प्रभावना की गई। इनमें पं. श्री रतनलालजी बैनाड़ा (अधिष्ठाता-श्रमण-संस्कृति संस्थान सांगानेर) के तत्त्वावधान में महाराष्ट्र के विविध-स्थानों पर धर्म-सरिता प्रवाहित की गई। इसके अन्तर्गत 02 मई से 16 मई 2004 तक कोपरगांव में शिविर आयोजित

किया गया। इसमें सुबह सामूहिक पूजन प्रातः 8.00 से 10.30 दोपहर 2.30 से 5.00 एवं सायं 7.30 से 10.00 बजे तक समयसार, तत्त्वार्थसूत्र, छहदाला, बालबोधादि की कक्षाएं चलती थी। स्वयं बैनाड़ा जी ने समयसार का अध्यापन कार्य कराया जिसमें बड़ी संख्या में स्वाध्याय-प्रेमियों ने भाग लिया। संध्याकालीन सत्र में सांगानेर से पधारे विद्वानों के प्रवचनों से साधर्मियों को मार्गदर्शन मिला। तदनन्तर बैनाड़ा जी द्वारा किया गया सामायिक-पाठ का अर्थ एवं जिज्ञासा-समाधान समूचे शिविर का आकर्षण तथा ज्ञानवर्धक रहा। सम्पूर्ण शिविर में लगभग 500 शिविरार्थियों ने भाग लिया। शिविर के उत्साह का पता इसी से लगता है कि नितिन दादा आदि समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने अगले तीन वर्षों तक शिविर लगाने का अनुरोध बैनाड़ा जी से किया।

17 मई से 27 मई 2004 तक बारामती (महा.) शिविर भी बैनाड़ा जी के तत्त्वावधान में सम्पन्न हुआ। यहां पर प्रातः 7.00 से 8.00 तक एक विशेष कक्षा लगाई गई जिसमें वे सभी साधर्मि-भाई आते थे जो किसी कार्यवश पूरा दिन व्यस्त रहते थे। इसमें श्री पी. सी. पहाडिया जी ने बड़ी सरल रीति से उनका जैन धर्म का प्राथमिक ज्ञान

कराया। यहां पर भी समयसारादि की कक्षाएं पूर्ववत् लगी। शिविर में सभी का बहुत उत्साह था। लगभग 350 शिविरार्थियों ने इस शिविर में भाग लिया।

28 मई से 05 जून 2004 तक करमाला (सोलापुर-महा.) में श्री पी. सी. पहाडिया जी के तत्त्वावधान में शिविर आयोजित किया गया जिसमें 125 शिविरार्थियों ने भाग लिया। प्रथम बार नगर में आयोजित शिविर में लोगों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। यहां पर तत्त्वार्थसूत्र, छहदाला, बालबोध, भक्तामरस्रोतादि कक्षाएँ लगाई गईं।

तदनन्तर बैनाड़ा जी के ही सान्निध्य में गुना (म.प्र.) में एक विशाल शिविर 07 जून से 17 जून 2004 तक आयोजित किया गया। जिसमें तत्त्वार्थसूत्र, छहदाला, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्डकश्रावकाचार, बालबोध, सामायिक पाठ एवं जिज्ञासा-समाधान इत्यादि कक्षाएँ लगाई गईं। शिविर के प्रति लोगों का उत्साह दर्शनीय था। बालबोध की विविध कक्षाओं में लगभग 500 बच्चों ने भाग लिया। कुल शिविरार्थी संख्या भी 110 थी। गुना जैन समाज के अध्यक्ष पवन कुमार जैन साहब ने स्वयं तत्त्वार्थसूत्र की कक्षा में भाग लिया और अपने वक्तव्य में अंतिम दिन कहा कि इतना अच्छा शिविर गुना नगर में पहले कभी नहीं लगा। इस शिविर में मुनि श्री 108 प्रशान्तसागर जी एवं मुनि श्री 108 निर्वेगसागर जी का भी मंगलसान्निध्य प्राप्त हुआ।

24 मई से 01 जून 2004 तक अमजोर (राज.) के विभिन्न सात आंचलों में भी पं. श्री वीरेन्द्र शास्त्री हीरापुर के संयोजन में संस्थान द्वारा शिविर लगाया गया जिसमें लगभग 1000 शिविरार्थियों ने भाग लिया। यह शिविर महिला-परिषद अजमेर ने आयोजित किया। जिसमें सभी ने बड़ी तन्मयता से भाग लिया।

05 जून से 15 जून 2004 तक बुन्देलखण्ड की पावन धरा पर 27 स्थानों पर उपा. ज्ञानसागर जी की पावन प्रेरणा से आयोजित श्रुतसंबद्धन ज्ञान संस्कार प्रशिक्षण शिविरों में संस्थान के 20 विद्वान छात्रों ने विविध स्थानों पर धर्म प्रचार किया। जिसमें लगभग 11,000 शिविरार्थियों ने भाग लिया।

19 मई से 28 मई 2004 तक जयपुर के 23 प्रांचलों में शिविर आयोजित किए गए। जिसके मुख्य संयोजन श्री रतनलाल नृपत्या जी ने किया। शिविर के मुख्य समन्वयक श्री डा. सनतकुमार जी, सहयोगी समन्वयक ब्र. भरत जी एवं श्रीमती कोकिला सेठी तथा संयोजक श्री सुरेन्द्र पाटनी एवं श्री संतोष गोदिका जी थे। इस शिविर में 1537 शिविरार्थियों ने भाग लिया, जिनमें से 1231 शिविरार्थी

परीक्षा में सम्मिलित हुए। इस शिविर में 14 स्थानीय विद्वानों ने एवं 12 संस्थान-सांगानेर के विद्वान छात्रों ने अध्यापन कार्य कराया।

ग्रीष्मावकाश में लगाए गए शिविरों के माध्यम से जो धर्म-सरिता प्रवाहित हुई, उसका प्रभाव यह हुआ कि इस वर्ष सत्र 2004-05 में छात्रावास में 41 नूतन छात्रों का प्रवेश हुआ। 18 जुलाई 2004 को संस्थान द्वारा नवागत छात्र प्रवेश समारोह का आयोजन किया गया। इसमें मुख्य अतिथि पद राजस्थान सरकार के शिक्षामंत्री श्री घनश्यामदास जी तिवाड़ी, अध्यक्ष पद संस्थान के अध्यक्ष श्री गणेश जी राणा, विशिष्ट अतिथि पद श्री मोहनदास अग्रवाल ने सुशोभीत किया। इसके अलावा संस्थान के सभी पदाधिकारीगण एवं गणमान्य जन भी पधारे। इस अवसर पर छात्रों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम पेश किए गए। नूतन छात्रों ने अपने अनुभव को भी सुनाया। संस्थान के उपाधिष्ठाता भी राजमल बेगस्या जी ने नवागत सभी छात्रों के लिए श्रमण संस्कृति रक्षार्थ प्रतिज्ञा भी दिलवाई। अन्त में मुख्य अतिथि महोदय ने अपने उद्बोधन में कहा कि श्रमण-संस्कृति एवं वैदिक संस्कृति विश्व की दो प्राचीन संस्कृति हैं, अनादिनिधन हैं। हमारा देश जो जगद्गुरु के नाम से विश्वविख्यात है इसमें यदि कुछ है तो मुनि, साधु, संतों का समागम है। ऐसी अजस्र प्रवाहमान संस्कृति एवं संस्कृत के रक्षार्थ जो यह संस्थान खोला गया है। यह जैनियों के लिए ही नहीं, राजस्थान और भारत-वर्ष के लिए भी गौरव की बात है। मैंने अपने जीवनकाल में इतना सुन्दर संस्थान अन्यत्र नहीं देखा। समारोह का सफल संचालन श्री राकेश जी (संस्कृत व्याख्याता) ने किया।

संस्थान के छात्र धर्म प्रचारक के अलावा सामाजिक कार्य भी करते हैं। इसके अन्तर्गत 21 जुलाई 2004 को 'विद्याविनोद काला मेमोरियल ट्रस्ट' के लिए संस्थान सांगानेर के 11 छात्र एवं अध्यापकों ने उनकी पुण्यतिथि पर श्री महावीर कैंसर अस्पताल जयपुर में रक्तदान देकर अभयदान का सराहनीय कार्य किया।

पं. मनोज शास्त्री

मुनिश्री समता सागर जी महाराज द्वारा “प्रवचनमाला”

परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम आशीर्वाद से इस वर्ष हमारे सिवनी शहर में पूज्य श्री समतासागर जी महाराज एवं ऐलक श्री निश्चयसागर जी का चातुर्मास स्थापना दि. 04-07-2004 को हो चुकी है। चातुर्मास स्थापना का कार्यक्रम श्री सुमत जैन, भोपाल के

कर कमलों से सम्पन्न हुआ। चातुर्मास के प्रथम चरण में मुनि श्री समतासागर जी महाराज प्रतिदिन सुबह 8.30 से 9.30 तक जागरण प्रवचन माला के माध्यम से 15 दिन तक विभिन्न विषयों पर विस्तार से प्रवचन दे रहे हैं।

प.पू. मुनि श्री सुधासागर जी का पावन वर्षायोग

परमपूज्य दिगम्बर जैन आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के योग्यतम सुशिष्य, ज्ञानगंगा के भागीरथ प्राचीन धरोहरों के प्रबल संरक्षक एवं प्रकाशक, पुरातत्त्वविद्, वास्तुमर्मज्ञ, आध्यात्मिक सन्त पूज्य मुनिपुंगव 108 श्री सुधासागर जी महाराज, पूज्य क्षुल्लक 105 श्री गंभीरसागर जी महाराज, पूज्य क्षुल्लक 105 श्री धैर्यसागर जी महाराज एवं ब्र. संजय भैया का मंगलमय पावन वर्षायोग 'विद्यापुरम (रतनबाग), श्री 1008 चन्द्रप्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर जी के पास, पारले पोईन्ट, सूरत- 395007 (गुजरात) में सम्पन्न हो रहा है।

सम्पर्क सूत्र-ओमप्रकाश जैन 2226098
कमलेश बी. गांधी 9824511816

प.पू. मुनि श्री प्रमाणसागर जी का पावन वर्षायोग

विन्ध्य क्षेत्र की नगरी सतना में पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी महाराज एवं बालब्रह्मचारी श्री अशोक भैया का पावन वर्षायोग श्री दयानन्द सरस्वती भवन, अहिंसा चौक सतना, (फोन : 507135) में सम्पन्न हो रहा है।

श्री अ.भा. दि.जैन विद्वत्परिषद् के तत्त्वावधान में 12वीं राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी का आयोजन

सूरत (गुजरात) में परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी महाराज एवं क्षुल्लक श्री धर्मसागर जी महाराज के पावन सानिध्य एवं श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के तत्त्वावधान में दि. 23 से 25 अक्टूबर 2004 तक त्रिदिवसीय श्रावकाचार संग्रह-अनुशीलन राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया है। इस विद्वत्संगोष्ठी के संयोजक डा. शेखरचन्द जैन अहमदाबाद एवं डा. अशोक कुमार जैन लाड़नू तथा व्यवस्थापक श्री शैलेष कापड़िया सूरत होंगे।

विद्वत्परिषद् के मन्त्री डा. सुरेन्द्रकुमार जैन के अनुसार इस संगोष्ठी में देश के ख्याति प्राप्त 55 विद्वानों को आमन्त्रित किया गया है। इस अवसर पर श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का वार्षिक अधिवेशन भी संभावित है। संगोष्ठी में मुनिसंघ एवं विद्वानों की उपस्थिति में अध्यात्म अमृत कलश, संत गणेश वर्णी चित्रकथा विद्वद-विमर्श,

प्रवचन-सुधा आदि कृतियों का विमोचन किया गया। यहाँ उल्लेखनीय है कि मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज का पावन वर्षायोग इस वर्ष विद्यापुरम् रतनबाग, पारले पोईन्ट, सूरत-395007, गुजरात में हो रहा है।

डा. सुरेन्द्र जैन भारती

साहित्याचार्य (डॉ.) पन्नालाल जैन संस्थान का शुभारंभ

परम पूज्य आचार्य प्रवर 108 श्री विद्यासागर जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त कर संस्थान के संस्थापक श्री ब्र. प्रदीप जैन शास्त्री 'पीयूष' के सानिध्य में संस्कारधानी जबलपुर में दिनांक 20 जुलाई 2004 को संजीवनी नगर में साहित्याचार्य (डॉ.) पं. पन्नालाल जैन संस्थान का शुभारंभ किया गया। इस संस्थान में त्यागीव्रती एवं बह्वचारी भाइयों व समाज के छात्रों को अध्ययन व आवास की सुविधा उपलब्ध कराने की समुचित व्यवस्था की गई है।

राकेश जैन, जबलपुर

बच्चों को संस्कारित नहीं किया तो मंदिरों के ताले खोलने वाले नहीं मिलेंगे

उक्त मार्मिक उद्गार सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाबचंद 'पुष्प' ने अपने अध्यक्षीय भाषण में व्यक्त किए। 'पुष्प' जी ज्ञानसागर गुरुकुल (बरनावा) के तृतीय स्थापना दिवस पर आयोजित समारोह में बोल रहे थे। उन्होंने कहा कि 'आज गजरथ की नहीं ज्ञानरथ की आवश्यकता है।' समारोह के प्रारंभ में डॉ. कपूरचंद जैन (खतौली) ने गुरुकुल की गतिविधियां बताते हुए कहा यह हर्ष का विषय है कि दो वर्ष की अल्प अवधि में ब्र. अतुल जी ने गुरुकुल का भवन तैयार कर लिया आज यहां लगभग 30 विद्यार्थी अध्ययनरत हैं जिनकी भोजन आदि की व्यवस्था पूर्णतः निशुल्क है। डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) ने गुरुकुल के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। डॉ. ज्योति जैन (खतौली) ने बच्चों को संस्कारित करने की आवश्यकता पर बल दिया। समारोह का सफल संचालन ब्र. जय निशांत जी ने किया।

त्रि-दिवसीय पाठशाला संगोष्ठी

परमपूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के शिष्य मुनि श्री 108 निर्णयसागर जी, मुनि श्री 108 अजितसागर जी, ऐलक श्री 105 निर्भयसागर जी महाराज का सानंद चातुर्मास चल रहा है। मुनिसंघ की प्रेरणा और आशीर्वाद से जैसीनगर (सागर) में प्रथम त्रि-दिवसीय पाठशाला शिक्षक प्रशिक्षण एवं संगोष्ठी आयोजित करने का सकल जैन समाज का भाव हुआ है। जैसीनगर, सागर

मुनि श्री शान्तिसागर विनयांजलि अष्टक

मुनि श्री आर्जवसागर जी

वर्तमान में श्रमण मार्ग के, श्रेष्ठ सु-धारक आप रहे।
चौथे युग की चर्या के भी, ज्ञाता उत्तम आप रहे ॥
घोर तपों बहु उपवासों से, कर्मबंध को शिथिल किया।
शान्तिश्री के पद कमलों में, मम मन ने यह नमन किया ॥

जिनके पावन दर्शन पाने, श्रावक दौड़े आते थे।
अमृतमय गुरु सदुपदेश से, शान्ति सुधा को पाते थे ॥
त्याग, दया व क्षमाशीलता, गुण जीवन में लाते थे ॥
शान्तिश्री की गौरवता को, सब मिल करके गाते थे ॥

शूरवीर बन इस भारत की, तीर्थ वंदना जिनने की।
सत्य अहिंसा जैन धर्म की, श्रेष्ठ पताका फहरा दी ॥
श्रमण जनों के दर्शन का ये, स्वप्न यहाँ साकार हुआ।
शान्तिश्री का जीवनदर्शन, जन जन का हित दर्श हुआ ॥

ज्ञानी ध्यानी महाव्रती वे, स्वानुभवी व समधनी थे।
पूजा ख्याति प्रलोभनों से, बहुत दूर वे यतिवर थे ॥
अहंकार का नाम नहीं था, ओंकार से पूरित थे।
शान्तिश्री जी इस धरती पर, धर्ममार्ग की मूरत थे ॥

सरल वृत्ति का शान्त सरोवर, जिनमें है लहराता था।
स्याद्वाद के तट में बँधना, इस जग को सिखलाता था ॥
सभी मतों से बने एकता, धर्मसूत्र हैं बतलाये।
जीव मात्र पर करुणा के थे, सबक आपने सिखलाये ॥

मिथ्यारूपी अंधकार को, आगम पथ दे दूर किया।
सम्यग्दर्शन की किरणों से, मुक्तिमार्ग प्रशस्त किया ॥
वीर जवानों की सेना के, आप रहे आदर्श यति।
महामनीषी महा सु-योगी, बड़े आपकी शुभ कीर्ति ॥

भगवन देश व कुलभूषण के, परम भक्त हैं आप रहे।
समाधि लेकर उनके पद में, मरणविजेता आप रहे ॥
संत शिरोमणि महातपोधन, शान्तिसागराचार्य श्री ॥
हम सब वंदन करते पद में, हमें मिले वह मुक्तिश्री ॥

शान्ति वीर अरु शिवसागर थे, ज्ञान, विद्या के आधार।
जिनके कदमों पर चल करके, बना 'आर्जव' मैं अनगार ॥
यही भावना गुरुचरणों में, वन्दन करके शत बार।
बने चेतना निर्मल मेरी, पाऊँ मुक्ति समता धार ॥

'धर्मभावना' से साभार

सतना म.प्र. में 'जैन युवा सम्मेलन'

संतशिरोमणि परमपूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के परमप्रभावक शिष्य, तरुणाई के प्रखर वक्ता मुनिश्री 108 प्रमाणसागर जी महाराज के सान्निध्य में जैन युवा सम्मेलन रविवार, 12 सितम्बर 2004 को आयोजित करने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसका उद्देश्य समाज की युवाशक्ति को संगठित कर उन्हें दिशा बोध कराना है।

इसी तारतम्य में समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विशेष योगदान देने वाले पाँच युवाओं को 'जैन युवा रत्न' एवार्ड से सम्मानित किया जायेगा।

अतः समाज के सभी नवयुवकों से अनुरोध है कि आप अपनी संस्था के सभी पदाधिकारी एवं सदस्यों की इष्ट मंडली सहित पधारकर युवाशक्ति को जाग्रत करने एवं सामाजिक एकता को बनाये रखने के लिये अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर हमें कृतार्थ करें।

संयोजक : दीपक जैन

मो. 9425173802

जैन क्लब भवन, चौक बाजार, सतना 485001 (म.प्र.)

फोन : 07672 - 507135

जैन संस्कृति में आस्था का दुर्लभ उदाहरण

आज जब सम्पूर्ण भारत में पश्चिमी सभ्यता सिर पर चढ़ कर बोल रही है, बालकों के जन्मदिनोत्सवों पर केक काटने और 'हेप्पी बर्थ डे टू यू' का विदेशी मन्त्रोच्चार करने का रिवाज आम हो गया है, तब चि. सिद्धार्थ जैन के पाँचवें जन्मदिनोत्सव (8 अगस्त 2004) का दृश्य देखकर हृदय को बड़ी शीतलता मिली। शीतलता का कारण था जन्मदिनोत्सव-अनुष्ठान में भारतीय एवं जैन संस्कृति के दर्शन होना।



चि. सिद्धार्थ के पिता श्री शरद जैन एवं माता श्रीमती संगीता जैन (स्व. श्री नन्नूमल जी एवं श्रीमती रुक्मिणी देवी के नाती) भोपाल के एक प्रतिष्ठित, सुसंस्कृत श्रेष्ठिकुल के उत्तराधिकारी हैं। कुण्डलपुर के बड़े बाबा और परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के अनन्य भक्त हैं। उनमें भारतीयता एवं जैनत्व के संस्कार कूट-कूट कर भरे हुए हैं। उन्होंने अपने सुपुत्र के जन्मदिवसोत्सव में केक कटवाने की बजाय उसके द्वारा बड़े बाबा एवं आचार्यश्री के चित्रों के समक्ष पाँच दीप

प्रज्वलित कराए तथा पुष्पांजलि अर्पित कराते हुए पंचाग नमस्कार करवाया। इसके पश्चात् उन्होंने श्री दिगम्बर जैन अतिथयक्षेत्र कुण्डलपुर एवं भारतवर्षीय दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी मुम्बई को, जिसके वे स्वयं राष्ट्रीय मंत्री हैं, ग्यारह-ग्यारह हजार रुपए दान किए। 'जिनभाषित' के लिए भी पाँच सौ रुपयों का दान घोषित किया। बालकों के जन्मदिनोत्सव मनाने की यह भारतीय एवं जैन पद्धति समाज के लिए अनुकरणीय है। इसका उदाहरण प्रस्तुत कर समाज को इसकी प्रेरणा देने के लिए हम श्री शरद जी एवं श्रीमती संगीता जी का अभिनन्दन एवं साधुवाद करते हैं।

सम्पादक